प्रस्तावना

भूगोल का सम्बन्ध लोगों से होता है। यह सिर्फ पहाड़ों, नदियों और सीमाओं का वर्णन नहीं होता। हर जगह मनुष्य का प्रकृति के साथ सम्बन्ध बनता है, और खाद्य पदार्थ व वस्तुएँ पैदा करता है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से समाज भी विकसित होते हैं। कुछ समाजों में, लोग जिस प्रकार का काम करते हैं, और जितनी उनकी सम्पत्ति होती है, उसमें कोई बहुत अन्तर नहीं होता। पर कुछ समाजों में काम और सम्पत्ति को जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर विभाजित किया जाता है। तो इस तरह, सामाजिक सम्बन्धों, स्वामित्व और वितरण की प्रकृति के सन्दर्भ में समाज एक से नहीं रहे हैं – और ये भी समय के साथ और स्थानों के अनुरूप बदले हैं।

मनुष्य अलग-अलग तरह के सामाजिक स्थानों जैसे शहरों, कस्बों, खेतिहर गाँवों, वनों, मछुआरा बस्तियों में रहते हैं... और दुनिया में अलग-अलग समाजों और संस्कृतियों वाले कई देश हैं... लोग एक दूसरे के साथ काम करते हैं, सम्बन्ध बनाते हैं और बहुत कुछ सीखते हैं... लेकिन कभी-कभी लोगों के बीच प्रतिस्पर्धाएँ, युद्ध और विनाश भी होते हैं... इस तरह सभी स्थानों की अपनी-अपनी अलग कहानियाँ होती हैं।

भूगोल इस बात का भी अध्ययन है कि किस तरह मनुष्यों के समाज दुनिया को बदलते हैं। प्रारम्भिक मानव बस्तियाँ नदी घाटियों के किनारे बसी थीं। मनुष्यों ने लगभग 10,000 वर्ष पहले फसलें उगाना और पशुओं को पालतू बनाना सीखा था। यह दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में स्वतंत्र रूप से हुआ था। करीब 6000 साल पहले खेती के काम में बैल का उपयोग किया गया और फिर बाद में हल का उपयोग किया गया। खेती से काफी सम्पदा पैदा हुई। इसी ने आगे जाकर दासता को जन्म दिया, तथा सम्पत्ति की मिल्कियत समाज के कुछ चुनिन्दा समूहों के हाथ में आ गई। इसी स्थिति से धीरे-धीरे राज्यों और राजवंशों का उदय हुआ।

समय बीतने के साथ, समाज ने शिकार करने वाले, संग्रह करने वाले समूहों से बदलकर राज्यों का रूप ले लिया। और इन बदलावों के साथ-साथ कई और सामाजिक-भौगोलिक बदलाव भी सामने आए हैं। लोगों के बीच सामाजिक सम्बन्ध बदल गए, और जाति-आधारित, लिंग-आधारित भेदभावों के तथा दासता के नए स्वरूप सामने आए। नदी घाटियों जैसे भौगोलिक स्थानों की चाह बढ़ती चली गई, और वे सम्पदा की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण स्थान बन गए। सम्पदाओं के इन्हीं स्वरूपों के इर्द-गिर्द रियासतों का निर्माण हुआ, तथा विभिन्न कबीलों और रियासतों के बीच संघर्ष और समझौते होने लगे। कृषि क्षेत्रों के इर्द-गिर्द कस्बे और नगर बसे जो व्यापार का केन्द्र बने, जहाँ राजाओं या सम्राटों ने अपने महल बनाए, और जहाँ अनेक शिल्पकारों और कारीगरों ने अपने उत्पाद तैयार किए। और गाँवों व शहरों के भीतर ही स्थानिक भेद भी थे। कौन किस जगह पर काबिज हुआ? इसका फैसला जाति, लिंग और वर्ग के आधार पर होने लगा।

हम यहाँ समाज में ऐतिहासिक बदलावों की बात तो कर रहे हैं, पर ऐसा नहीं था कि ये बदलाव सभी भौगोलिक दृष्टि से सभी स्थानों पर हुए हों। जनजातीय समाज अधिकांशतः ऊँचाई पर स्थित इलाकों में रहते हैं, और अक्सर उन्हें वहाँ से भी विभिन्न आधुनिक प्रक्रियाओं द्वारा विस्थापित कर दिया जाता है। अगर हम पूरे देश पर निगाह डालें तो हम जनजातीय समाजों, ग्राम समाजों और औद्योगिक समाजों का भौगोलिक स्वरूप देख सकते हैं। जहाँ इन विभिन्न स्थानों और समाजों के एक दूसरे के साथ सम्बन्ध हैं, वहीं वे अपने-अपने ढाँचों और प्रक्रियाओं को बनाए रखने की कोशिश करते हों। विभिन्न स्थानों और कालों में इन सम्बन्धों के स्वरूपों को समझना सामाजिक भूगोल का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य बन जाता है।

भारतीय समाज की असमानताएँ आज भी जाति और लिंग के आधार पर तय होती हैं। शहरों के उदय से कई सामाजिक बदलाव सामने आए हैं, उदाहरण के लिए, शहरों में जाति और लिंग-आधारित भेदभाव की सोच की पकड़ पहले की तुलना में ढीली पड़ी है। पर नई तरह की असमानताएँ सामने आई हैं। हर बड़े शहर में, हमें झुग्गियाँ देखने को मिल जाती हैं जहाँ गरीब लोग रहते हैं। गाँवों में ऊँची जातियों के लोगों के पास अधिकांश ज़मीनों का स्वामित्व होता है, जो खेती के माध्यम से उत्पादन का माध्यम बनती है। शहरों में लोगों का एक खास वर्ग कारखानों का मालिक होता है जो शहरों में उत्पादन का माध्यम होते हैं। कामगार वर्ग के लोगों के पास इस तरह का स्वामित्व नहीं होता, और इन लोगों का एक अलग वर्ग

बन जाता है जो अपने श्रम को बेचता है। शहरों के सामाजिक दायरे वर्ग और लिंग के आधार पर बाँटे जाते हैं। पर अधिकांश मामलों में जाति-आधारित मान्यताएँ व रीति-रिवाज आज भी भारतीय शहरों को प्रभावित करते हैं। तो हर जगह की अपनी कई कहानियाँ होती हैं, जो कभी-कभी तो अतीत का ही विस्तार होती हैं, पर कभी-कभी नई परिस्थितियों से जन्म लेती हैं।

हम आपको भारत के भूगोल पर लिखी गई नई किताबों की एक पूरी ृंखला को पढ़ने के लिए आमन्त्रित करते हैं। हर पुस्तक भारत के किसी एक राज्य या केन्द्र-शासित प्रदेश पर केन्द्रित है। ये किताबें न सिर्फ अपने पाठों के जरिए आपको एक भौगोलिक यात्रा पर ले जाती हैं, बल्कि आपको एक नया मानचित्र भी देती हैं। मानचित्र भूगोल को समझने के महत्वपूर्ण उपकरण हो सकते हैं। जिस तरह से भूगोल की चर्चा यहाँ की गई है, उसे समझने-बूझने के लिए और उस पर काम करने के लिए हमें ऐसे नए मानचित्रों की आवश्यकता है जो न सिर्फ हमें यह बताएँ कि शहर और सड़क कहाँ हैं, बल्कि स्थानों को सामाजिक सम्बन्धों के लिहाज से समझें जिनकी सदैव बदलने की सम्भावना रहती है। इसलिए एक नए प्रकार का मानचित्र बनाया गया है जो पारम्परिक मानचित्रों के मापों और उनकी गणित का उपयोग करता है, पर साथ ही साथ भिन्न प्रकार के निरूपणों का समूह तैयार करता है जो पारम्परिक मानचित्रों में उपयोग किए जाने वाले निरूपणों से ज़्यादा ठोस है। इसकी हाथ से बनाई गई तस्वीरें दर्शाती हैं, कि किस तरह भूगोल मनुष्यों की प्रकृति के साथ होने वाली अन्तर्क्रिया है जो समाजों को तथा सामाजिक रिश्तों को बनाती और बदलती है।

राजस्थान पर लिखी गई यह किताब भूगोल को पुनर्परिभाषित करने का एक प्रयास है। राजस्थान देश की किसी भी प्रमुख नदी घाटी का हिस्सा नहीं है। पर गंगा घाटी और अरब सागर के बीच इसकी भौगोलिक स्थिति कई सामाजिक और ऐतिहासिक बदलावों का केन्द्र रही है। यहाँ व्यापार व संचार के महत्वपूर्ण मार्ग विकसित हुए थे। कारवाँओं, व्यापारियों और खेतिहर लोगों ने यहाँ गतिशीलता का ऐसा भूगोल विकसित किया जिसने गंगा घाटी को समुद्र से जोड़ा।

राजस्थान के बारे में लोगों के बीच कई कथाएँ प्रचलित हैं। यह किताब इन कथाओं को समझाने की कोशिश करती है, और बँधी-बँधाई धारणाओं से अलग हटने की कोशिश करती है। इस किताब में राजस्थान में रहने वाले विभिन्न समुदायों की पड़ताल करने का, और समय व स्थान के व्यापक सन्दर्भ में उनके सामाजिक-भौगोलिक सम्बधों की पड़ताल करने का सामूहिक प्रयास किया गया है। आशा है कि बुनियादी रूप से विद्यार्थियों के लिए लिखी गई यह किताब, आम पाठकों में भी लोकप्रिय होगी।

इस किताब को लिखते हुए बहुत सारे स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है जिनकी सूची किताब के अन्त में दी गई है, और उनके साथ में इस पुस्तक की वे पृष्ठ संख्याएँ भी बताई गई हैं जहाँ इन स्रोतों का उपयोग किया गया है।

राजस्थान का दृश्यात्मक मानचित्र

संकेत

प्राकृतिक विभाग

नदी

पर्वत

झील (इनमें जलाशय भी शामिल हैं)

रेत के टीले

वन्य जीवन तथा वनस्पति

खेजरी का पेड़

बबूल का पेड़

सेवन घास

नीलगाय

काला मृग

इंडियन बस्टर्ड/ गोडावण

मोर

साईबेरियाई सारस

फसलें

धान

सरसों

गेहूँ

ज्वार

बाजरा

गन्ना

कपास

चना

पशुपालन

गाय-बैल

ऊँट

भेड़

शिल्प व उद्योग

नमक बनाना

लकड़ी के खिलौने

मूर्तियाँ

संगमरमर का काम

लकड़ी का काम

हाथी दाँत का काम

ताँबे की खदान

बलुआ पत्थर की खदान

यातायात

सड़कें

रेलमार्ग

सिंचाई

नहर

स्मारक

किले

राजमहल

यह एक रूपरेखा मानचित्र है, और इसे शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए तैयार किया गया है।

इस मानचित्र पर क्षैतिज दूरियाँ लगभग 1 सेमी = 20 किमी के पैमाने से दर्शाई गई हैं।

यहाँ दिखाए गए नगरों/कस्बों ने अपेक्षाकृत अधिक स्थान दिया गया है ताकि उनका चित्रात्मक वर्णन हो सके।

राजस्थान का दृश्यात्मक मानचित्र

टिप्पणीयाँ

आधुनिक मानचित्र मुख्यतः मार्गदर्शन के लिए, क्षेत्रीय सीमाओं के दस्तावेजीकरण के लिए और युद्धों के लिए रणनीतिक योजना बनाने हेतु विकसित किए गए थे। इन सभी मामलों में शुद्धता और सटीकता की अत्यन्त ज़रूरत होती है, और मानचित्रों को इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए ऊपर से दिखाई देने वाले दृश्य के मुताबिक बनाया जाता है। इसलिए मानचित्र के संकेत चिह्न बहुत थोड़ी क्षैतिज जगह लेते हैं, और उन्हें बिन्दुओं व रेखाओं द्वारा निरूपित किया जाता है। पर जब इन मानचित्रों को शिक्षा जगत में इस्तेमाल किया जाता है तो उनका अत्यधिक अमूर्त स्वरूप छोटी उम्र के विद्यार्थियों के मन में मानचित्रों द्वारा जगाए जा सकने वाले आकर्षण की सम्भावना को बाधित कर देता है। इसके अलावा, जब मानचित्र के ऊपर उल्लिखित नियमित उद्देश्यों से हटकर, हमारे सन्दर्भ भूगोल सीखने के हों, तो यह बहुत साफ है कि मानचित्रों की प्रकृति को बदलना भी ज़रूरी हो जाएगा। इस किताब में ऐसे कम अमूर्त मानचित्र बनाने का प्रयास किया गया है जो (1) ठोस निरूपणों के लिए छोटी उम्र के विद्यार्थियों की ज़रूरतों को पूरा कर सकें, और (2) विस्तृत क्षेत्र के सन्दर्भ में भौगोलिक रिश्तों को समझने की ज़रूरत को पूरा कर सकें।

मानचित्रों पर वस्तुओं और प्रक्रियाओं के ठोस निरूपण का अर्थ होगा इस उद्देश्य के लिए क्षैतिज स्थान का अधिक उपयोग किया जाना। यह उस स्थिति में सम्भव नहीं हो सकता है अगर हम सिर्फ ऊपर से दिखाई देने वाले दृश्य पर आधारित तरीके का इस्तेमाल करें। इसलिए इस किताब के मानचित्र के लिए 45 डिग्री के दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है, जिससे दृश्यात्मक मानचित्रों को बनाना सम्भव हो पाया।

दृश्यात्मक मानचित्रों को बनाने में, भूमि की विशेषताओं को, राष्ट्रीय मानचित्र एवं विषयक मानचित्रण संगठन (नाटमो, विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, कलकत्ता, 1986) द्वारा बनाए गए भारत के विभिन्न क्षेत्रों के मानचित्रों की धरातलीय संरचनाओं से जुड़ी जानकारियों के आधार पर, व्यवस्थित रूप से बनाया गया है। इन मानचित्रों को दो मानक अक्षांश रेखाओं की मदद से समान क्षेत्र शांकव प्रक्षेपण पर 1: 2,000,0000 के पैमाने पर बनाया गया है। अन्य विषयों को द्वितीयक स्रोतों के विस्तृत अध्ययन द्वारा तैयार किया गया है। नए मानचित्र के पैमाने और प्रक्षेपण को नाटमो मानचित्र के अनुरूप ही रखा गया है।

हमने मानचित्र को निम्नलिखित विषयों के आधार पर तैयार किया:

- भूमि की विशेषताएँ
- कृषि
- शहरी केन्द्र
- वनभूमि
- परिवहन
- आजीविकाएँ
- वन्य जीवन

आभार

ऐसा मुश्किल से ही होता है कि किताबें सिर्फ और सिर्फ लेखकों की मेहनत से तैयार होती हों। वे दरअसल विचारों, चर्चाओं, समालोचनाओं और संशोधनों का समागम होती हैं, और इसलिए किसी किताब को तैयार करने में कई लोग और कई दिमाग लगते हैं। यह किताब मध्य प्रदेश के सरकारी स्कूलों में पूर्व में पढ़ाए गए एकलव्य के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम के अनुभवों से बनी है। उन अनुभवों के दौरान यह देखा गया था कि स्कूल की किताबों में दिए गए मानचित्रों का अमूर्त स्वरूप छोटी उम्र के विद्यार्थियों के लिए भौगोलिक उपकरणों के रूप में उनकी सम्भावना को सीमित कर रहा था। इससे एक ऐसा मानचित्र परियोजना की शुरुआत हुई जिसके माध्यम से मैंने इस समस्या का अध्ययन किया और साथ ही बाज़ार में उपलब्ध मानचित्रों की समीक्षा भी की... और इसने नए मानचित्रों के विकास का, और इस किताब को लिखने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

भूगोल की शिक्षा में किए गए महत्वपूर्ण कार्यों ने दिखाया है कि भौगोलिक ज्ञान की पुर्नव्याख्या करने की सख्त ज़रूरत है। पिछली आधी से ज़्यादा सदी से, दुनियाभर के भूगोलविद 'सामाजिक' और 'स्थानिक' के बीच के अर्न्तसम्बन्धों को प्रगट करने की कोशिश कर रहे हैं। इन बदलावों ने भूगोल की पुर्नव्याख्या के लिए एक गतिशील दृष्टि निर्मित की है। पर हमारे देश में विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध भौगोलिक साहित्य में विरले ही इस दृष्टि का इस्तेमाल किया जाता है। फलस्वरूप भौगोलिक ज्ञान की लोकप्रिय छवियाँ विश्वकोष वाले स्वरूप में ही जकड़ी हुई हैं।

देश भर में भूगोल को पुनर्निमित करने की जीवन्तता मौजूद है। पूँजी और श्रम के बीच होने वाला संघर्ष भौतिक परिदृश्य को, तथा सामाजिक ढाँचों और रिवाजों को भी नया रूप दे रहा है। हमें अपने देश के इसी वास्तविक भूगोल को समझने और उसका अध्ययन करने की ज़रूरत है। और भूगोल की उन परम्पराओं के द्वारा यह करना सम्भव नहीं है जो उत्पादन की प्रक्रियाओं को सामाजिक संरचनाओं के साथ जोड़कर नहीं देख पातीं। लेकिन अब सामाजिक और रूपान्तरकारी भूगोल की नई पद्धतियाँ हमें स्थान और समाज के आपस में गुथे हुए सम्बन्धों का अध्ययन करने में समर्थ बनाती हैं।

आधुनिक समय में स्कूलों और कालेजों के माध्यम से शिक्षा के सार्वजनिक स्थान बनाए गए हैं। इन स्थानों का उद्देश्य उत्पादन के लिए कामगार शक्ति तैयार करना और आधुनिक राज्य के लिए नागरिक तैयार करना तो है ही, पर साथ ही इनमें ज्ञान तक पहुँच बनाने के लिए संघर्ष करने की सम्भावनाएँ भी मौजूद हैं। ज्ञान तक पहुँच को शिक्षा के भौतिक स्थानों में कामगार वर्ग, महिलाओं और दलितों के दाखिलों की दृष्टि से तो समझा ही जाना चाहिए पर साथ ही इसे ज्ञान की प्रकृति के नजरिए से भी समझना होगा। उदाहरण के लिए, यह समझना कि ज्ञान का उपयोग किसके हित में और किस प्रारूप में किया जाता है? भूगोल के सन्दर्भ में ऐसे सवाल ऊपर उल्लिखित ज्ञान की प्रकृति से जुड़ जाते हैं। शिक्षा के लिए संघर्षों को और प्रखर होने की ज़रूरत तो है ही क्योंकि निजीकरण का तर्क शिक्षा के सार्वजनिक स्थलों को निगलता जा रहा है, पर साथ ही लोगों को उपलब्ध होने वाले पढ़ने के अनौपचारिक स्थानों का विस्तार करना भी ज़रूरी है। यह किताब यही करने का एक प्रयास है।

इस किताब के बनने में ज्ञान, समाज और पाठक वर्ग के ये अनेक अन्तर्सम्बन्धित सन्दर्भ एक दूसरे के साथ जुड़ गए। और ऐसे कई व्यक्तियों के योगदान के बिना यह सम्भव नहीं होता जो या तो राजनैतिक, अकादमिक या शैक्षणिक मुद्दों पर काम कर रहे हैं या फिर विद्यार्थी हैं।

इस किताब में जिस प्रकार के दृश्यात्मक मानचित्र उपयोग किए गए हैं, कलाकार उनके मानचित्रण की सीमाओं से बँधा होना सामान्यतः ज़्यादा पसन्द नहीं करते। मैं त्रिपुरारी सिंह को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने इस काम को अपने हाथ में लिया और मानचित्र का अन्तिम चित्रांकन कार्य पूरा किया। मैं वीना एम. को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने शासकीय हाई स्कूल, मन्ननथाला तथा शासकीय उच्च प्राथमिक स्कूल कल्लायम (त्रिवेन्द्रम) के विद्यार्थियों के साथ मानचित्र पर चर्चा की। उन्होंने बड़ी मेहनत व बारीकी से विद्यार्थियों से मानचित्रों पर बहुमूल्य फीडबैक हासिल किया, और राजस्थान के बारे में प्रचलित बँधी-बँधाई छवियों व धारणाओं की जानकारी भी इकट्ठी की। मैं किशोर उम्र के विद्यार्थी सनी सेबेस्टीन का भी शुक्रिया अदा करती हूँ जिन्होंने दृश्यात्मक मानचित्र के बारे में अपनी बेबाक प्रतिक्रियाएँ दीं।

बिन्दु थिरूमलाई और कृतिका विश्वनाथन ने द्वितीयक स्रोतों को इकट्ठा करने में मेरी मदद की। इन दोनों तथा नीलेश नीमकर, प्राची बोगाम, कार्तिक वैंकटेश और फिओना फर्नांडिज़ ने एक लेखन कार्यशाला में हिस्सा लिया था जो होशंगाबाद में आयोजित कराई गई थी। मैं नीलेश को अध्याय 2 में उनके ठोस योगदान के लिए खास तौर से धन्यवाद देती हूँ। होशंगाबाद के किशोर विद्यार्थियों, प्रमोद यादव, रजनी वर्मा, पिंकी बाबरिया, विशाल यादव, निधि वर्मा, ललित यादव, आकाश माझी और पुलकित मालवीय के साथ किताब के प्रारम्भिक विचारों और अध्यायों की विषयवस्तु पर चर्चा की गई, और उन्होंने अपने बहुमूल्य सुझाव हमें दिए। रूपम गौर ने इन विद्यार्थियों को संगठित किया था, जो हमारे होशंगाबाद के पुस्तकालय में नियमित रूप से आया करते थे।

मनीष जैन, सलील एम. ई., योगेश दीवान, एलेक्स एम. जॉर्ज, कुमकुम रॉय, डी. नन्दकुमार, राजाराम बधू, रश्मि पालीवाल, और सी. एन. सुब्रमण्यम ने किताब की पाण्डुलिपि पर अपनी मूल्यवान टिप्पणियाँ दी जिनसे किताब की विषयवस्तु और उसके दृष्टिकोण में संशोधन करने और उन्हें परिष्कृत करने में मदद मिली। इन लोगों के सहयोग के लिए मैं उनकी बहुत आभारी हूँ। मैं प्रसन्थन. एम को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अध्यायों की, व किताब की आत्मा को समझा और आवरण पृष्ठ व शीर्षक पृष्ठों के चित्र बनाए।

मैं बोस्की जैन को चित्रों के लिए, किताब की रूपरेखा के लिए, और रश्मि पालीवाल को उसके सम्पादन के लिए धन्यवाद देती हूँ। मैं इन दोनों को खास तौर पर धन्यवाद देती हूँ कि किताब के पुनर्लेखन और उसमें बार-बार कुछ अंश जोड़ने के कारण रूक-रूक कर हुई इस यात्रा के दौरान उन्होंने अपना धैर्य बनाए रखा।

1

राजस्थान की कल्पना करना!

हर स्थान का नाम हमारे दिमाग में कुछ छवियाँ पैदा करता है, जो उस स्थान में रहते हुए और वहाँ काम करते हुए हमारे अनुभवों से निर्मित होती हैं। ये छवियाँ पढ़ने, सुनने या फिर तस्वीरों और चलचित्रों को देखने से भी पैदा होती हैं। और अक्सर हम अपने मन में स्थानों और लोगों के बारे में बँधी बँधाई छवियाँ व धारणाएँ बना लेते हैं...। सभी स्थान आश्चर्यों और रहस्यों से भरे भी होते हैं – उदाहरण के लिए उन स्थानों के बनने की प्रक्रियाएँ, तथा लाखों साल में वहाँ पर हुए भूगर्भीय बदलाव जो वहाँ की जलवायु, भूदृश्य और वनस्पतियों को प्रभावित करते हैं, और इस तरह से उन स्थानों के भूगोल को प्रभावित करते हैं...।

'राजस्थान'...यह शब्द सुनकर हमारे मन में कुछ छवियाँ उभरती हैं:

राजस्थान मरुस्थल है।

यह राजाओं और महाराजाओं का स्थान है।

ऊँट मरुस्थल का जहाज है।

राजस्थान राजपूतों की भूमि है।

यहाँ नागफनी का पौधा पैदा होता है जो अपने गूदे वाले हिस्से में पानी संग्रह करके रखता है।

इनमें से कुछ छवियाँ राजस्थान के कई स्थानों के लिए सही हैं। इनमें से कुछ उस बीते समय के लिए सही हैं जिसे हम 'अतीत' कहते हैं। कई चीज़ें लम्बे समय तक एक-सी रहती हैं। पर यहाँ कई चीज़ें बदल गई हैं। उदाहरण के लिए, अब हमारे देश में राजा और महाराजाओं का शासन नहीं है। मन में कई सवाल उभरते हैं, जैसे:

क्या राजस्थान के सभी लोग राजपूत हैं?

क्या राजपूत लोग हमेशा लड़ाई करते थे और जीतते थे?

राजस्थान के लोग कौन हैं? वे किस तरह का जीवन जीते हैं?

क्या पूरा का पूरा राजस्थान मरुस्थल है?

क्या राजस्थान हमेशा ही गर्म रहता है? क्या वहाँ पानी गिरता है?

आज राजस्थान भारत के कई राज्यों में से एक राज्य है। क्या राजस्थान अपने पड़ोसी राज्यों से अलग है? किस तरह अलग है? क्यों अलग है? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिन्हें हम इस किताब में समझने की कोशिश करेंगे।

दृश्यात्मक मानचित्र

आप इस किताब के पिछले आवरण पृष्ठ के साथ संलग्न एक दृश्यात्मक मानचित्र देख सकते हैं। उसमें आप मरुस्थल, रेत के टीले, ऊँट, लोग, फसलों की खेती, कस्बे, नगर, सड़कें, नहरें और रेल लाइनें देख सकते हैं।

मानचित्र की पड़ताल करें और निम्नलिखित बातों का पता लगाएँ:

- क्या राजस्थान के कुछ भाग दूसरे भागों की अपेक्षा ज़्यादा सूखे हैं? राजस्थान के सूखे इलाके कौन से हैं?
- मानचित्र को देखते हुए, आप क्या सोचते हैं कि ये इलाके सूखे क्यों हैं?
- राजस्थान में कौन से पहाड़ दिखाई देते हैं?
- राजस्थान के पड़ोसी राज्य कौन से हैं?

- राजस्थान से लगे पड़ोसी देश का नाम भी लिखें।
- आप मानचित्र में कुछ लोगों को पशुओं को चराते देख सकते हैं। लोग कौन से दूसरे काम कर रहे हैं?

माला, अब्दुल और मिनी तीन बाल मित्र हैं जिन्हें मरुस्थल तथा ऊँटों की कहानियाँ बड़ी मनमोहक लगती हैं। हमने राजस्थान का एक मानचित्र बनाया था, और हम उसके भूगोल को समझने की, तथा स्थानीय परिवेश में लोगों की जीवनशैली, और पर्यावरण के साथ उनके क्रियाकलापों को समझने की कोशिश कर रहे हैं। साथ ही हम यह समझने का भी प्रयास कर रहे हैं कि ऐतिहासिक रूप से राजस्थान का स्वरूप किस तरह से न केवल वहाँ घटने वाली घटनाओं के कारण निर्मित हुआ है, बल्कि दुनियाभर में होने वाली कई घटनाओं के कारण परिवर्तित हुआ है। यह किताब हमारे और बाल मित्रों – माला, अब्दुल और मिनी - के बीच की बातचीत है। वे राजस्थान के दृश्यात्मक मानचित्र की पड़ताल कर रहे हैं।

देखो राजस्थान का पश्चिमी इलाका तो सूखा है।

पूर्वी राजस्थान में झीलें, तालाब और नदियाँ हैं।

पश्चिम में रेत है। पेड़ बहुत कम हैं।

वह मरुस्थल है। वहाँ ऊँट होते हैं। ऊँटों को ज़्यादा पानी पीने की ज़रूरत नहीं होती।

वहाँ लोग ऊँटों पर सफर करते हैं।

गाय-बैल वहाँ बिना पानी के कैसे जीवित रह सकते हैं?

लोग वहाँ भेड़ भी पालते हैं। पर उन लोगों को गर्म मरुस्थल में ऊनी कपड़ों की ज़रूरत क्यों पड़ती है?

वहाँ कई स्थानों पर घास खूब पैदा होती है!

पर यह कैसे सम्भव है?

इन मित्रों की तरह, आपके मन में भी कई सवाल होंगे। यह मानचित्र आपको राजस्थान के बारे में बहुत कुछ बताता है। जिस तरह आप कोई किताब पढ़ते हैं, उसी तरह आप इस मानचित्र को भी पढ़ सकते हैं। राजस्थान के बारे में वह सब कुछ लिखें जो आप इस मानचित्र से समझ सकते हैं। और, आपके मन में जो सवाल आएँ उन्हें भी लिख लें।

करोड़ों साल पहले

कुछ करोड़ साल पहले राजस्थान पानी के नीचे था!

बहुत समय बाद पानी बह गया और अपने पीछे रेत के अम्बार छोड़ गया। अगर आप पश्चिमी राजस्थान की रेत को खोदें तो आपको वहाँ थोड़ा मीठा पानी मिलेगा, लेकिन उसके नीचे खारा पानी ही है।

क्या आप इस दृश्यात्मक मानचित्र में जैसलमेर को देख सकते हो? जैसलमेर से करीब 17 किमी दूर बाड़मेर के रास्ते पर, अकाल लकड़ी जीवाश्म पार्क स्थित है। इस पार्क में पेड़ के तनों के जीवाश्म रखे हैं, जिनमें से कुछ लगभग 18 करोड़ साल पुराने हैं। ये जीवाश्म संकेत देते हैं कि बहुत पहले इस भूमि पर घने जंगल थे तथा यहाँ की जलवायु गर्म और आर्द्र थी। इस पार्क में समुद्री जीवों के सदियों पुराने खोल भी रखे हैं, जिनसे यह संकेत मिलता है कि यह भूमि किसी समय पानी के नीचे रही होगी।

जीवाश्म अवसादी चट्टानों के बीच दब गए पौधों और जीव-जन्तुओं के अवशेष होते हैं।

अवसादी चट्टानें क्या होती हैं?

हवा और पानी मौजूदा चट्टानों पर मार कर-करके उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों या अवसादों में तोड़ देते हैं। ये अवसाद पानी और हवा द्वारा एक जगह से दूसरी जगह ले जाए जाते हैं। वे ढलानों से लुढ़ककर भी नीचे आ जाते हैं। फिर ये अवसाद नीचे बैठ जाते हैं, भारी अवसाद हल्के अवसादों की तुलना में पहले नीचे बैठ जाते हैं।

जब अवसाद इस ढंग से नीचे बैठते हैं, तो वे एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। पानी द्वारा लाए गए अवसाद एक दूसरे से इतने कसकर जुड़ जाते हैं कि पानी उन अवसादों में से निचुड़ जाता है और ये अवसाद बहुत कठोर हो जाते हैं। पानी में घुले कई खनिज अवसादों को एक साथ जोड़ने में मदद करते हैं। कठोर हो चुके अवसादों की परतों से चट्टानें बनती जाती हैं।

अवसादी चट्टानें बनने की प्रक्रिया करोड़ों सालों में पूरी होती है।

और फिर वही चट्टानें फिर टूट कर अवसादों का रूप ले लेती हैं! और इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है...।

जीव-जन्तुओं और पौधों के अवशेष भी इसी तरह जमा होते जाते हैं और चट्टानों के बीच फँस जाते हैं, और जैसे-जैसे उनके ऊपर अवसादों की परतें जमती जाती हैं, वे कठोर होते जाते हैं। और फिर वे जीवाश्म में बदल जाते हैं। इस प्रकार चट्टानों की परतों के बीच में कभी-कभी पशुओं और वनस्पतियों के जीवाश्म मौजूद रहते हैं। ये जीवाश्म हजारों साल पुराने भी हो सकते हैं।

चित्र

अवसादन

अवसादों की परतें

जीवाश्म

मछली का जीवाश्म

हो सकता है कि करोड़ों साल पहले के वे पशु और पौधे आज इस क्षेत्र में मौजूद न हों।

इसीलिए ये जीवाश्म अतीत के भूगोल का दस्तावेज बन जाते हैं।

जहाँ आज जीवाश्म पार्क है, वहाँ करीब 18 करोड़ साल पहले कोई जंगल रहा होगा! फिर समुद्र ने इस क्षेत्र को जलमग्न कर दिया और पेड़ के तने जीवाश्मों के रूप में संरक्षित हो गए।

भूगोलः अतीत और निरन्तरता

राजस्थान के अन्दर जलवायु और वनस्पति में जो बदलाव बहुत लम्बे समय में हुए प्रतीत होते हैं उनके क्या कारण थे? भूवैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी पर दो बड़े भू-भाग – उत्तर में लॉरेशिया और दक्षिण में गोंडवानालैंड – थे। और इन दोनों के बीच में टेथिस सागर स्थित था। बाद में, लॉरेशिया, यूरेशिया, उत्तर अमेरिका और ग्रीनलैंड में विभाजित हो गया। गोंडवानालैंड, ऑस्ट्रेलिया, अन्टार्कटिका, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और भारत में विभाजित हो गया। ये सभी भू-भाग बहकर अपनी नई स्थितियों में पहुँच गए, लेकिन भारत एक अनोखे और अद्वितीय ढंग से अपनी जगह से हटा।

चित्रः 65 करोड़ साल पहले गोंडवानालैंड की स्थिति की दृश्यात्मक कल्पना (एन. एस वीर्डी के अनुसार, 1990)

भारत की हलचल

भारत अफ्रीका से अलग होकर उत्तर की ओर बढ़ने लगा। इस प्रकार वह टेथिस सागर के एक छोर से दूसरे छोर तक बहकर दक्षिणी गोलार्ध से उत्तरी गोलार्ध तक पहुँच गया।

चित्रः एशियाई भू-भाग

भारत का उत्तर की ओर खिसकना (के. एस. वैद्य के अनुसार, 1998)

उत्तर की ओर गति करते हुए भारत लगभग 57 से 52.5 करोड़ साल पहले भूमध्य रेखा पर पहुँच गया था। वाष्पीकरण के बढ़ने के साथ पानी की उथली राशियों में लवण का सघन जमाव हो गया जैसा आज हम राजस्थान में मारवाड़ के बिलारा क्षेत्र में तथा पाकिस्तान के नमक पर्वत में देख सकते हैं। करीब 20.5 से 13.5 करोड़ साल पहले भारत के कई भागों में समुद्र का पानी भर गया था जिनमें आज के राजस्थान व गुजरात के मारवाड़, कच्छ और सौराष्ट्र क्षेत्र शामिल थे। करीब 6.5 से 5.5 करोड़ साल पहले भारत ने एशिया के भू-भाग को छुआ। भारत की इस हलचल ने टेथिस के समुद्र तल को मोड़कर हिमालय पर्वत का रूप दे दिया। उस समय भारत का एक बड़ा भाग समुद्र से घिरा हुआ था जिसमें राजस्थान का जैसलमेर - बीकानेर क्षेत्र भी शामिल था। सिर्फ 3.4 से 3 करोड़ साल पहले ही अन्ततः समुद्र यहाँ से पीछे हट गया। धीरे-धीरे टेथिस सागर का पानी यहाँ से निकल गया।

जलवायु सम्बन्धी बदलाव

हिमालय पर्वत (जो उस समय बहुत ऊँचा नहीं था) की नदियाँ अपने साथ अवसाद/तलछट लेकर आईं और उसे अपने प्रवाह के निचले छोर की ओर लाकर जमा कर दिया, जिससे सिंजु-गंगा के मैदानों का जन्म हुआ जो पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ पठार तक फैला हुआ था।

चित्रः 50 लाख साल पहले के हिमालय की स्थिति की दृश्यात्मक कल्पना (आर. चेनगप्पा के अनुसार, 1993)

50 लाख साल पहले भी हिमालय पर्वत इतने ऊँचे नहीं थे कि वे चार पैरों पर चलने वाले भारी-भरकम जानवरों को इधर से उधर आने-जाने से रोक सकते। वहाँ पर मिले जीवाश्म के प्रमाणों से उस समय ऐसे जानवरों की मौजूदगी पता चलती है।

अतीत में कभी राजस्थान में हाथी रहते थे।

हाथी बहुत सारी पत्तियाँ और फल खाते हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि बहुत पहले इस जगह हरियाली रही होगी।

अम्मा ने मुझे बताया था कि बहुत लम्बे समय में जलवायु और हरियाली में बदलाव आ जाता है।

राजस्थान से हासिल किए गए प्रमाण इस बात की और इशारा करते हैं कि 10800 से 3500 साल के बीच के काल में वहाँ अच्छी वर्षा हुई होगी। और 5000 से 3500 साल पूर्व का समय बहुत भारी वर्षा वाला समय था, जिसके फलस्वरूप उस वक्त राजस्थान और तिब्बत के क्षेत्र खूब हरे-भरे और खाद्य सामग्री से भरपूर हो गए थे। भारतीय भूभाग के निरन्तर गतिशील रहने से कई बदलाव हुए जैसे कि हिमालय पर्वत की ऊँचाई का बढ़ना। इसके फलस्वरूप जलवायु से जुड़े कई परिवर्तन हुए। अब हिमालय पर्वत इतने ऊँचे हो चुके थे कि वे अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से आने वाली हवाओं को ऊपर उठाने में मदद कर सकें और भारतीय उपमहाद्वीप में मानसून वर्षा करा सकें। साथ ही, इसके फलस्वरूप उत्तर पश्चिम में, खास तौर पर आज के उत्तरी पाकिस्तान में, शुष्क दशाओं का प्रसार हुआ।

भारत के भूभाग की निरन्तर गति

भारतीय शील्ड की उत्तर की ओर गति, जिससे हिमालय और ऊँचा उठता जाता है, अभी भी जारी है। ऐसी गतियों को 'टेक्टोनिक (विवर्तनिकी) हलचलें' कहा जाता है, और ये बहुत अधिक तनाव और ऊर्जा का संचय कर देती हैं। और यही तनाव व ऊर्जा अक्सर भूकम्पों के माध्यम से बाहर निकलते हैं। पिछली डेढ़ सदी में हिमालय से लगे विभिन्न स्थानों पर कई बड़े भूकम्प आए हैं।

चित्रः हिमालय को लग रहा धक्का (वी. के. गौर के अनुसार, 1993) 5.5 सेमी प्रति वर्ष

अरावली पर्वत

अपने दृश्यात्मक मानचित्र में अरावली पर्वत ृंखला को देखें। यह गुजरात में अहमदाबाद के समीप पालनपुर से लेकर उत्तर में दिल्ली तक फैली है। दिल्ली की चट्टानी पहाड़ियाँ (रिज) अरावली पर्वत ृंखला का उत्तरी हिस्सा हैं। अरावली

दुनिया की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक हैं।

जहाँ अरावली पर्वतों की सबसे अधिक ऊँचाई दक्षिणी राजस्थान में माउण्ट आबू के गुरु शिखर (1722 मीटर) पर है, वहीं दिल्ली और गुजरात की तरफ जाते हुए वह कम ऊँचाइयों पर पहुँच जाती है। झीलों वाला शहर उदयपुर अरावली पर्वतों की दक्षिणी ढलानों पर स्थित है। क्या आप अपने दृश्यात्मक मानचित्र में उदयपुर और माउण्ट आबू को ढूँढ सकते हैं?

अरावली पर्वत ृंखला दुनिया की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक है।

पर्वत प्राचीन और नवीन कैसे हो सकते हैं?

पर्वत पृथ्वी की सतह के नीचे होने वाली हलचलों के माध्यम से निर्मित होते हैं। इन हलचलों को टेक्टोनिक हलचलें कहा जाता है। कभी-कभी ये हलचलें होती हैं और कभी बन्द हो जाती हैं। जब इन हलचलों को बन्द हुए बहुत लम्बा समय गुजर जाता है तो उनसे बने हुए पर्वतों को प्राचीन पर्वत कहा जाता है।

चित्रः पर्वतों का निर्माण

टेक्टोनिक हलचलें

टेक्टोनिक हलचलें मन्द गति से होती हैं, और बहुत लम्बे काल में वे पृथ्वी की सतह पर बदलाव करती हैं। आप महसूस नहीं कर पाएँगे कि पृथ्वी की सतह के नीचे ऐसी हलचलें हो रही हैं क्योंकि ये हलचलें बहुत ही मन्द गति से होती हैं। अरावली पर्वत आज की तुलना में प्राचीन समय में कहीं ज़्यादा ऊँचे थे। पर एक समय अरावली को निर्मित करने वाली हलचल बन्द हो गई। इसलिए उनका ऊँचा उठना भी बन्द हो गया।

फिर तो उनकी ऊँचाई उतनी ही होना चाहिए। उनकी ऊँचाई घट कैसे सकती है?

करोड़ों वर्षों से, अरावली पर्वतों से नीचे की ओर बहने वाला पानी अपने साथ पर्वतों की मिट्टी बहाकर ले जाता रहा है। हवाएँ भी सतह की मिट्टी को अपने साथ उड़ा ले जाती है। तो धीरे-धीरे पर्वत घिसते जाते हैं। और जब पेड़ काटे जाते हैं, तो मिट्टी बड़ी आसानी से हट जाती है।

पेड़-पौधे मिट्टी की रक्षा करते हैं

चित्रः पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी को बाँधे रखती हैं और उसका कटाव होने से रोकती हैं।

वर्षाजल उजड़ी भूमि से मिट्टी को बहाकर ले जाता है।

हमने पढ़ा था कि हिमालय ऊँचे उठ रहे हैं।

उन्हें युवा पर्वत कहा जाता है क्योंकि वे अभी भी बढ़ रहे हैं।

जिसका मतलब यह हुआ कि अरावली की सतह के नीचे की हलचलें तो रूक गई हैं...।

...पर हिमालय की सतह के नीचे होने वाली हलचलें नहीं रूकी हैं।

दृश्यात्मक मानचित्र को देखें:

अरावली पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ कौन-सी हैं?

यह भी देखें कि हर नदी कहाँ को जा रही है?

2

राजस्थान का मरुस्थल

सूखा, यानी पानी का अभाव, वह लक्षण है जो मोटे तौर पर मरुस्थल को एक भौतिक श्रेणी बनाता है। लेकिन मानव समाज ने भी इस प्राकृतिक स्थिति से संघर्ष किया है और समाधान खोजे हैं। और गतिशीलता मरुस्थल की एक असाधारण प्रक्रिया है जो जीने का ऐसा तरीका निर्मित करने में मदद करती है, जहाँ लोग सूखे की चरम स्थिति के समय अस्थायी रूप से दूसरे क्षेत्रों को चले जाते हैं। पशुधन मरुस्थलीय समाज की प्रमुख प्राथमिक गतिविधि का आधार है, और इसी से चमड़ा और ऊनी वस्त्रों के उद्योग निकले हैं। भूमिगत लवणीय जल की प्रचुरता के चलते मरुस्थल में नमक बनाने का उद्योग भी विकसित हो गया है।

इस मानचित्र में, आप भारत की प्रमुख नदियों को देख सकते हैं। राजस्थान सभी प्रमुख नदी घाटियों से काफी दूर स्थित है। अपने दृश्यात्मक मानचित्र में, लूनी नदी को देखें – यह कोई बड़ी नदी घाटी नहीं बनाती। यह अजमेर के निकट अरावली पर्वत ृंखला में पुष्कर घाटी से निकलती है और गुजरात में कच्छ के रण की दलदल में खत्म हो जाती है।

पश्चिमी राजस्थान रेतीला है।

वहाँ पेड़ बहुत कम हैं।

राजस्थान का मरुस्थल, जो थार कहलाता है, में रेत के टीले पाए जाते हैं। जब हवा द्वारा रेत को हटाकर उसे पहाड़ी जैसी रचना में बदल दिया जाता है तो उसे रेत के टीले कहते हैं। कभी-कभी ये 150 मीटर तक ऊँचे उठ जाते हैं और हवाओं के चलने पर अपना स्थान भी बदल लेते हैं।

चित्रः मरुस्थल के सिर्फ कुछ भागों में ही रेत के टीले हैं। वहाँ के कई अन्य इलाके पथरीले हैं।

मरुस्थल में लोगों ने जीने का ऐसा तरीका विकसित कर लिया है जो भेड़ों, ऊँटों और गाय-बैलों को पालने पर ज़्यादा निर्भर करता है और कृषि पर कम। पश्चिमी राजस्थान में अधिकांशतः चारागाह-आधारित जीवनशैली ही पाई जाती है।

चरागाह-आधारित जीवनशैली क्या होती है?

लोग पशुओं के झुण्ड पालते हैं। सूखे और बंजर क्षेत्रों में, गर्मियों के समय में चारे और पानी के न होने के कारण लोग अपने गाय-बैलों, भेड़ों और ऊँटों के झुण्डों को लेकर दूसरे स्थानों पर चले जाते हैं।

फिर वे लोग वर्षाकाल में वापस आ जाते हैं। इस तरह वे लोग अपनी गतिशीलता के माध्यम से अपनी आजीविका और जीवनशैली को बनाए रखते हैं। राजस्थान देश में कच्चे ऊन का सबसे बड़ा उत्पादक है। राजस्थान में भेड़ों की सर्वाधिक सघन आबादी मरुस्थल में पाई जाती है।

नदी घाटियों में, कृषि के साथ-साथ पशुपालन का भी विकास हुआ था। हल चलाने और पानी को उठाने के लिए पशुओं की ज़रूरत पड़ती थी। पशुओं का उपयोग कोल्हू को चलाने के लिए भी किया जाता था। पर सिन्धु और गंगा के मैदानों से लगे राजस्थान के बंजर क्षेत्र में, चारागाही प्रणाली अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार बन गई। पशुओं के पालन-पोषण की विशेषज्ञताओं के जरिए इस इलाके ने कृषि क्षेत्रों के लिए गाय-बैलों की थारपरकर, राठी और नागौरी जैसी गुणवत्तापूर्ण प्रजातियाँ भी दीं। ये पशु भार ढोने की अपनी ऊँची क्षमता के लिए जाने जाते हैं। मरुस्थल के लोग भेड़ को ऊन के लिए और ऊँट को यातायात और ढुलाई के लिए रखते हैं। यहाँ दूध और उससे बनने वाले उत्पाद जैसे घी सदियों से व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएँ रही हैं।

गतिशीलता का भूगोल

लोग गाय-बैल, भेड़, बकरी, ऊँट और भैंस पालते हैं। ये जानवर उन्हें दूध, मांस, ऊन, चमड़ा और खाल देते हैं। मरुस्थल

में ऊँट यातायात का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। रेगिस्तान में, जहाँ अन्य साधनों से यात्रा करना बहुत मुश्किल होता है, आप ऊँट पर बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान को यात्रा कर सकते हैं।

चित्रः गाय, भेड़, बकरियाँ, ऊँट, भैंस

दूध, खाल, मांस, ऊन, ट्रार

दृश्यात्मक मानचित्र को ध्यानपूर्वक देखें। जैसलमेर और बाड़मेर जैसे शहरों के अलावा क्या राजस्थान के मरुस्थल में गाँव नहीं होंगे जिन्हें इस मानचित्र में दिखाया नहीं गया है। हाँ, बिलकुल, गाँव हैं। राजस्थान के रेबाड़ी लोग गाँवों में रहते हैं और पशुपालन करके अपना जीवनयापन करते हैं। उनमें से कई छोटे-छोटे भूखण्डों पर खेती भी करते हैं, जिन पर बहुत थोड़ी उपज होती है। कभी-कभी तो यह इतनी भी नहीं होती कि खुद उनकी खाने की ज़रूरतों को पूरा कर सके। और अक्सर सूखा पड़ने से स्थितियाँ और मुश्किल हो जाती हैं। रेबाड़ी लोग अपने पाले हुए पशुओं से मिलने वाले ऊन, मांस, दूध, चमड़े और खाल को बेचते हैं। इससे उन्हें बाज़ार से ज़रूरत की चीज़ें खरीदने का पैसा मिल जाता है।

रेबाड़ी लोग दो समूहों – मारू रायका, जो पारम्परिक रूप से ऊँटों को पालने वाले लोग हैं, और गोदवार रायका, जो पारम्परिक रूप से भेड़ पालने वाले लोग हैं। लेकिन आज ये भेद दिखाई नहीं देते क्योंकि अब दोनों ही समूह ऊँट और भेड़, पालते हैं, बकरियाँ रखते हैं और कुछ जगहों पर भैंसे और गाय-बैल भी रखते हैं। यहाँ कुछ दूसरे समूह भी हैं जैसे चारण, जो पारम्परिक रूप से गाय-बैल पालते हैं और गैरी लोग जो पारम्परिक रूप से भेड़पालक हैं।

सर्दियों में और वर्षाकाल में, यहाँ घास उपलब्ध रहती है। लेकिन मरुस्थल में गर्मियाँ बहुत शुष्क और गर्म होती हैं। घास सूख जाती है। इसलिए चरवाहे अपने पशुओं को लेकर ऐसी जगहों पर चले जाते हैं जहाँ घास और चारा मिल सके। अक्सर वे मध्य प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली, गुजरात और राजस्थान के पूर्वी भागों को भी चले जाते हैं। आप इन क्षेत्रों को दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। ये चरवाहे अगले मानसून के ठीक पहले वापस आ जाते हैं। इससे उन्हें वर्षाकाल में थोड़ी-बहुत खेती करने का मौका मिल जाता है। अक्सर कुछ ऐसे गाँवों में, जहाँ पानी उपलब्ध होता है, वहाँ सम्भव है कि वे सिर्फ थोड़े से समय के लिए बाहर जाएँ। ऐसी स्थिति में वे आसपास की जगहों पर ही जाते हैं और बस गर्मियों के ठीक बाद वापस आ जाते हैं।

आम तौर पर ये लोग सिर्फ गर्मियों के दौरान बाहर जाते हैं, मार्च से जून तक। लेकिन उन वर्षों में जब वर्षा अच्छी नहीं होती तो वे ज़्यादा समय तक, नवम्बर से जून तक बाहर चले जाते हैं।

अन्यथा उनके लिए जीना मुश्किल हो जाएगा।

सर्वाधिक सूखे महीनों में, वे मरुस्थल से बाहर चले जाते हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि वे पूरे वर्ष के दौरान एक ही जगह पर नहीं रह सकते।

गाँवों में पशुओं को चराने के साझा स्थान

राजस्थान की सामुदायिक भूमियों ने चरवाहों की जीवन शैली को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन भूमियों को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे गोचर, सवाई चाक, गैर मुमकिन ज़मीन, ओरान, बानी इत्यादि। इनमें से कुछ तो खुली चारागाहें थी जबकि अन्य चारागाहें, जहाँ पानी उपलब्ध था, वहाँ जंगल लगे हुए थे। 1947 में स्वतंत्रता से पहले, इन ज़मीनों की देखरेख ठिकानेदारों द्वारा की जाती थी जो रजवाड़ों द्वारा नियुक्त किए जाते थे। वे मिट्टी और पानी का संरक्षण करके तथा पशुओं के चरने पर नियंत्रण रखकर ज़मीन की देखभाल करते थे। वे इन साझा भूमियों को इस्तेमाल करने वाले लोगों से कुछ शुल्क या कर भी वसूल करते थे।

पर कभी-कभी शक्तिशाली और समृद्ध लोग इन साझा भूमियों से पेड़ों को काटना शुरू कर देते हैं। आज के समय में गोचरों या ग्राम समुदाय के चारागाहों में अक्सर ज़रूरत से ज़्यादा चराई होती है, और चारे व ईंधन के लिए पेड़ों की अत्यधिक कटाई की गई है। इसके अलावा, कई जगहों पर शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली लोगों, जैसे समृद्ध ज़मींदारों ने इन साझी ज़मीनों पर अतिक्रमण कर कब्जा कर लिया है। गाँव के साधारण लोग अक्सर समुदाय के शक्तिशाली लोगों

के इन कृत्यों के खिलाफ संगठित होकर विरोध नहीं कर पाते।

आखिर क्यों और किस तरह से कुछ लोग, दूसरों से ज़्यादा ताकतवर हो जाते हैं?

उत्पादन के साधन के रूप में ज़मीन पर सिर्फ कुछ लोगों का ही स्वामित्व होता है। अन्य लोग जो ज़मीन पर काम करते हैं वे अपनी आजीविका के लिए इन लोगों पर निर्भर होते हैं। कुछ जातियाँ पारम्परिक रूप से ज़मीन की स्वामी होती हैं और कुछ नहीं होतीं। और ज़मीन का स्वामित्व रखने वाली इन जातियों के भीतर भी महिलाओं के पास ज़मीन का स्वामित्व नहीं होता। ये पहलू ही सामाजिक प्रभुत्व को तय करते हैं। इस प्रकार भूमि के स्वामित्व और जाति तथा लिंग से जुड़े नियमों ने कुछ लोगों के ऊपर अन्य लोगों की सत्ता को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तो ये सत्ता सम्बन्ध 'स्वाभाविक' नहीं हैं, पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से बनाए जाते हैं।

पथरीली परती भूमियों पर चराई

वर्षाकाल के दौरान वे ज़मीनें जिन पर खेती की जा सकती है, उन्हें चराई के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता। यही वह एक समय है जब लोग कुछ खेती कर सकते हैं। मरुस्थल के कई गाँवों में ऐसी पथरीली ज़मीनें हैं जिन पर खेती करना बहुत कठिन होता है। अतः ऐसी ज़मीनें बंजर ही रह जाती हैं। उन पर किन्हीं खास लोगों का स्वामित्व नहीं होता बल्कि वे सबकी साझी ज़मीनें ही होती हैं। ये साझी ज़मीनें वर्षाकाल में चरवाहों के लिए बहुत उपयोगी हो जाती हैं जब इन पर घास उग जाती है और वह चराई के काम आती है।

ओरण में चराई

मरुस्थली गाँवों में हरी-भरी ज़मीन के कुछ टुकड़े पाए जाते हैं। कुछ जगहों पर ये टुकड़े छोटे होते हैं और कहीं-कहीं बहुत विस्तृत। इन ज़मीनों में पानी का कुछ स्रोत होता है, इसलिए यहाँ पेड़ पनप जाते हैं। इस तरह की भूमि को ओरण कहा जाता है। मरुस्थल के लोगों ने पेड़ों की भूमि के रूप में इन ज़मीनों की रक्षा की थी। समुदाय के वृद्ध लोगों ने स्थितियों का नियंत्रण अपने हाथ में लेते हुए पेड़ों की और घास की कटाई को रोक दिया था। यहाँ चराई की जा सकती है और पेड़ों पर लगने वाले फलों को बाहर ले जाया जा सकता है। यह परम्परा बहुत उपयोगी रही थी क्योंकि यहाँ की घास और पेड़ की पत्तियाँ जानवरों के लिए बहुत अच्छा चारा थे।

चित्रः खेजरी का पेड़, जिसे चारे और ईंधन के लिए उपयोग किया जाता है।

खेजरी के फल या फली को संग्री कहा जाता है, और इसे सूखी सब्जी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

पेड़ के सभी भागों को अलग-अलग चिकित्सकीय उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है।

अधिकांश ओरण किसी न किसी स्थानीय देवी-देवता को समर्पित होते हैं। यहाँ के लोगों का यह विश्वास था कि जो लोग ओरण के नियमों का पालन करने में असफल हो जाते हैं, देवी-देवता उनसे नाराज हो जाते हैं और या तो उन्हें अन्धा कर देते हैं या उन्हें लकवा मार जाता है। इसलिए आम तौर पर लोग ओरण के नियमों का पालन ही करते थे। और वे लोग जो इन नियमों की अवहेलना करते थे उन्हें समाज में सम्मान के साथ नहीं देखा जाता था।

गोचरों के भी अपने नियम थे।

फिर भी शक्तिशाली लोग कभी-कभी इन नियमों का पालन नहीं करते थे।

लेकिन सामान्यतः लोग ओरण के नियमों का पालन करते थे।

आपके मुताबिक ऐसा क्यों होता है?

लेकिन स्वतंत्रता के बाद इन ओरणों को संरक्षित या राजस्व वनों में बदल दिया गया है, और इन क्षेत्रों में लोगों के अधिकारों को सीमित कर दिया गया है। इस बारे में आप इस किताब के आखिरी अध्याय में और अधिक पढ़ेंगे।

आज इन साझी ज़मीनों का प्रबन्धन सरकार के अलग-अलग महकमों के पास है – ग्राम समुदाय के चारागाहों की

देखरेख का अधिकार ग्राम पंचायतों के पास हैं, राजस्व बंजर भूमियों का बन्दोबस्त राजस्व विभाग के अधीन हैं, और ओरण तथा अन्य वनाच्छादित क्षेत्र वन विभाग के अधीन है।

निजी ज़मीनों पर चराई

वर्षाकाल में लोग थोड़ी खेती करते हैं। फसल की कटाई के बाद खेतों का उपयोग गाय-बैलों को चराने के लिए किया जाता है। यदि कोई किसान किसी साल खेत की जुताई नहीं करता तो उस भूमि का उपयोग पशुपालक अपने पशुओं को चराने के लिए करते हैं। यह व्यवस्था एक नियम की तरह है। मरुस्थल के गाँवों में ज़मीन के मालिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी निजी ज़मीनें चराई के लिए दें। यदि वे पशुपालकों को उनके पशु चराने से रोकते हैं तो उन्हें सज़ा दी जा सकती है।

तो ज़मीन का मालिक चरवाहों को "ना" नहीं कह सकता।

यह तो बहुत अच्छा है।

लेकिन ऐसा क्यों? क्या उस भूमि पर उसके मालिक का हक नहीं होता?

तो हक होने से क्या हुआ? बेचारे चरवाहे क्या करेंगे? वे कहाँ जाएँगे?

आप इस व्यवस्था के बारे में, या चरवाहों के अधिकारों के बारे क्या सोचते हैं?

चरवाहों को ऐसे अधिकार देने के पीछे क्या कारण रहे होंगे?

देखो, ज़मीन के मालिकों को भी अपने खेतों में पशुओं को चरने देने से लाभ ही होता है!

चरवाहों का स्थानान्तरण

हम इस बारे में अब थोड़ा बहुत जानते हैं कि भेड़ों, ऊँटों और गाय-बैलों को पालने वाले समुदाय गाँवों में किस तरह रहते हैं। हमने यह भी देखा था कि ये लोग अपने गाँवों से दूसरे क्षेत्रों को चले जाते हैं, और फिर कुछ समय बाद वापस लौटकर आ जाते हैं। ये यात्राएँ कभी-कभी छोटी, और कभी-कभी काफी लम्बी हो सकती हैं।

आम तौर पर जब वे लम्बी यात्रा पर दूसरे राज्यों को जाते हैं, तो पहले वे किसी स्थान पर इकट्ठा होकर एक बड़ा समूह बना लेते हैं। फिर वे छोटे-छोटे समूहों में अलग-अलग दिशाओं में अलग-अलग स्थानों को चले जाते हैं। वे अपने मार्ग में किसानों के सम्पर्क में रहते हैं। और वे ऐसे स्थानों पर जाते हैं जहाँ किसान अपनी गेहूँ और चने जैसी फसलों की कटाई कर चुके होते हैं, और वह ज़मीन परती पड़ी होती हैं।

किसान अक्सर अपनी ऐसी ज़मीन पर खुशी-खुशी चराई होने देते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि इससे उनकी ज़मीन और उपजाऊ हो जाती है। इन जानवरों का गोबर और पेशाब उस ज़मीन की मिट्टी के लिए उर्वरक का काम करते हैं। कई जगह तो किसान चरवाहों को अपनी मिट्टी को पोषित करने में मदद करने के लिए पैसा भी देते हैं। जब चरवाहे कस्बों और नगरों में पहुँचते हैं तो वे जानवरों का ऊन और मांस बेचते हैं। इस प्रकार ये यात्राएँ इन चरवाहों के लिए थोड़ा पैसे कमाने का अवसर भी होती हैं।

जीने के तरीके में बदलाव

इस तरह हम देखते हैं कि राजस्थान के चरवाहों का अपने गाँवों से, तथा उन जगहों से, जहाँ वे जाते हैं, गहरा जुड़ाव होता है। उन्होंने अपने जीवन को मरुस्थल के मुताबिक तो ढाला ही है, पर साथ ही जिन दूसरी जगहों पर वे जाते हैं उनके अनुरूप भी इन्होंने अपने जीवन में बदलाव किए हैं। यह देखा जाता है कि अब ये लोग भेड़ जैसे छोटे जानवरों को रखना पसन्द करते हैं। भेड़ से उन्हें ऊन और मांस मिल जाता है। ये लोग अब ऊँट जैसे बड़े जानवरों को नहीं रखना चाहते। ऐसा क्यों? इसलिए कि दूध की बिक्री की तुलना में भेड़ के ऊन और मांस की बिक्री से उन्हें ज़्यादा पैसा कमाने का मौका मिलता है।

यह देखा जाता है कि अच्छी वर्षा वाले सालों में भी ये समुदाय अक्सर दूसरी जगहों को चले जाते हैं। ऐसा क्यों? जब पशुओं को ऐसे खेतों में चराया जाता है जहाँ गेहूँ और चने की फसल की कटाई हुई हो तो उनका शारीरिक विकास अच्छा होता है और वे तन्दुरुस्त रहते हैं। यह भी देखा जाता है कि ऐसे जानवर ज़्यादा बच्चे पैदा करते हैं। अतः चरवाहे अपने पशुओं को ऐसी जगहों पर ले जाना पसन्द करते हैं जहाँ उन्हें बेहतर पोषण मिलता हो।

उन्हें फसलों की कटाई के एकदम बाद ही दूर-दराज के खेतों तक पहुँचना होता है। अगर वे पैदल जाएँ जैसा कि पुराने जमाने में होता था, तो वे समय से उन खेतों तक नहीं पहुँच पाएँगे। इसलिए उन्होंने ट्रक से यात्रा करना शुरू कर दिया है। यह यात्रा उन्हें बहुत महँगी पड़ती है। छोटे पशुपालक इतना खर्चा नहीं कर सकते। लम्बी यात्राएँ अधिकांशतः उन्हीं लोगों द्वारा की जाती हैं जिनके पास ज़्यादा पैसा होता है।

उनके पास बहुत सारा ज्ञान होता है।

हाँ, उन्हें पता होता है कि उनके गाय-बैलों को कब और कहाँ अच्छा चारा मिल सकता है।

और वे बाज़ार में अपनी चीज़ों को बेचते हैं, और ज़रूरत की चीज़ें खरीदते हैं।

और अपनी चलती-फिरती जीवन शैली, और दूसरी जगहों के लोगों की स्थाई जीवन शैलियों के बीच समन्वय स्थापित करते हैं।

जानवरों से मिलने वाले ऊन तथा मांस से इन लोगों को अच्छा पैसा मिल जाता है। इस वजह से रायका और मारुरायका समुदायों के अलावा दूसरे लोग भी आजकल इस गतिविधि में संलग्न हैं। उदाहरण के लिए राजपूत और मेघवाल लोग, जो कृषक रहे हैं और जिनके पास अपनी ज़मीनें रही हैं, उन्होंने पशुपालक और चरवाहा जीवनशैली के आर्थिक फायदों के लिए हाल के कुछ वर्षों में इसे अपना लिया है। उन्होंने 1980 के दशक में लम्बी दूरियों तक भेड़ों को चराना शुरू कर दिया था।

इसके अलावा स्थाई प्रवास के उदाहरण भी हैं, जैसे राजस्थान के पाली जिले के रायका भेड़पालक, जिनके परिवारों के कुछ सदस्य भेड़ों के अपने झुण्ड के साथ स्थाई रूप से मध्य प्रदेश में बस जाते हैं।

मौसमी प्रवासी चरवाहों के अलावा, ऐसे भी कुछ लोग हैं जो गाँवों में रहते हैं और बकरियाँ पालते हैं। ये अपेक्षाकृत अधिक गरीब तबके के लोगों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन जाता है। परिवार के भीतर महिलाएँ सामान्यतः इन पशुओं की देखरेख करती हैं।

2007 में, राजस्थान की पशुधन गणना की रिपोर्ट में, 2003 की पशुधन गणना के वक्त पशुओं के प्रतिशत की तुलना में निम्नलिखित अन्तर देखने को मिलते हैंः

पशुधन	बढ़ोतरी/गिरावट प्रतिशत
बकरियाँ	+ 27.9
भेड़	+ 11.3
गाय-बैल	+11.6
भैंस	+6.5
ऊँट	-15.3

तो इसका मतलब स्थितियाँ बदल रही हैं।

ऊँट पालन में जबरदस्त गिरावट आई है।

और सामान्य वर्षा के सालो में भी ये लोग दूसरे स्थानों को चले जाते हैं।

और ज़्यादा से ज़्यादा लोग पशुपालन करने लगे हैं।

क्या इन लोगों के बच्चे स्कूल जाते होंगे?

कैसे जाते होंगे? वे एक स्थान पर जो नहीं रुकते।

पशु मेले

राजस्थान में कई सारे पशु मेले लगते हैं। यहाँ लोग पशुओं को खरीदते और बेचते हैं। प्रत्येक मेले को एक खास नाम से जाना जाता है। अक्सर यह देखा जाता है कि इन मेलों का नाम स्थानीय देवी देवताओं के नाम पर रख दिया जाता है। कुछ प्रमुख मेले इस प्रकार हैं:

मानासर में लगने वाला रामदेवजी मेला

परबस्तर का तेजाजी मेला

मेरतानगर का बददेव मेला

ऊपर उल्लिखित सभी तीनों मेले नागौर ज़िले में लगते हैं।

मिल्लिनाथ मेला बाड़मेर ज़िले के तिलवाड़ा में लगता है।

नागौर पशु मेला

यह भारत के सबसे बड़े मेलों में से एक है और यह साल में एक बार, जनवरी-फरवरी के दौरान लगता है। यह मेला आठ दिन तक चलता है और हर साल लगभग 70,000 बैलों और घोड़ों का व्यापार होता है। यहाँ भेड़ों को भी खरीदा और बेचा जाता है। जानवरों को रंग-बिरंगे ढंग से सजाया जाता है। ये पशु मेले मवेशियों की अच्छी गुणवत्ता के लिए जाने जाते हैं जिन्हें यहाँ बेचने के उद्देश्य से खरीदा जाता है। बहुत समय से, नागौर के किसानों की पूरे उत्तर भारत में बैलों और गायों के कुशल पालन-पोषण के लिए खूब ख्याति रही थी।

ऊँट की चाल की एकरूपता को परखने के लिए उनकी दौड़ें करवाई जाती हैं, और यह देखा जाता है कि ऊँट दूध के घड़े को छलकाए बिना कितनी दूर ले जा सकता है। इस मेले में रस्साकशी, बैलों और ऊँटों की दौड़ें तथा मुर्गों की लड़ाइयों जैसी खेल गतिविधियाँ भी होती हैं। कठपुतली का खेल दिखाने वाले, कथावाचक और बाज़ीगर भी मेले में आने वाली भीड़ को अपनी कलाकारियों से रोमांचित करते हैं।

पुष्कर ऊँट मेला

यह मेला अक्टूबर-नवम्बर में, दीवाली के दस दिन बाद, अजमेर ज़िले के पुष्कर में लगता है। समय के साथ इस मेले की महत्ता बढ़ी है और आज यह एशिया के सबसे बड़े पशु मेलों में से एक है जहाँ हज़ारों ग्रामीण, तीर्थयात्री और सैलानी आते हैं। यह मेला दो हफ्तों तक चलता है जिसमें खाने के स्टॉल लगते हैं, बड़े झूले लगते हैं, खुले रंगमंच का आयोजन होता है तथा ऊँट, गजों और घोड़ों की दौड़ें कराई जाती हैं। पूर्णिमा की रात में यात्री पुष्कर झील में डुबकी लगाते हैं।

चमड़ा

चमड़ा राजस्थान का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है। इसमें गाँवों से कंकालों को इकट्ठा करने की प्रक्रिया शामिल रहती है। भैंसों, गायों, बकरियों और ऊँटों के मृत शरीरों से उसकी चमड़ी या खाल को अलग कर लिया जाता है। पारम्परिक रिवाजों के मुताबिक, ये काम खास जातियों के लोग ही करते हैं। फिर इन खालों को गाँवों की चमड़ा शोधन इकाइयों में भेज दिया जाता है।

चमड़ा शोधन इकाइयों में क्या किया जाता है?

खाल पर नमक मल दिया जाता है और फिर दो दिन बाद उसे धोया जाता है। इन खालों को फिर आठ दिनों तक बाजरे

के आटे और बाँज (ओक) के पौधों के दूध के घोल में डुबा कर रखा जाता है। पुनः खाल पर नमक लगा कर इस प्रक्रिया को फिर से दोहराया जाता है। फिर इन खालों को घोल से निकालकर सुखाया जाता है। फिर सुखाई गई खाल को बबूल की छाल से बने घोल में डुबाया जाता है। इस प्रक्रिया से खाल पर रंग चढ़ जाता है। अब इस रंगीन खाल को बड़े बेलनाकार थैलों की शक्ल में सिल दिया जाता है। फिर इन थैलों में बबूल की छाल वाले घोल को भर दिया जाता है, और फिर दो दिनों तक इन्हें लटकाए रखा जाता है। इस तरह चमड़े का शोधन हो जाता है। एक बार शोधित चमड़ा सूख जाए तो उस पर अरण्डी का तेल मल दिया जाता है।

राजस्थान में बबूल का पेड़ बहुतायत में पाया जाता है। यह एक मध्यम आकार का पेड़ होता है और इसकी डालों पर काँटे होते हैं। इसे कीकर (अकैशिया) भी कहा जाता है। इसकी छाल का चूरा बनाया जाता है और फिर उसे खालों और चमड़ों के शोधन में इस्तेमाल किया जाता है।

शोधित चमड़े का इस्तेमाल चमड़े के सामान जैसे जूते और बस्ते बनाने में किया जाता है। राजस्थान जयपुरी जूतियों को बनाने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। ये चमड़े के बने पारम्परिक जूते होते हैं जिनका अग्र भाग नुकीला और एड़ियाँ सपाट होती हैं, और इन्हें आसानी से और जल्दी से पहना जा सकता है। इन जूतों को बनाने के काम में कई कारीगर लगे रहते हैं। जूतियाँ बनाने में बकरियों और भैंसों के शोधित चमड़ों का इस्तेमाल किया जाता है।

राजस्थान में चमड़े के उत्पादों को ऊँट की खाल से भी बनाया जाता है। ऊँट की खाल से बने चमड़े के बस्ते अपनी गुणवत्ता के लिए जाने जाते हैं। पारम्परिक रूप से गाय, बकरी और भैंस की खालों का इस्तेमाल पानी को लाने – ले जाने के लिए किया जाता रहा है, और ऊँट की खालों का इस्तेमाल घी रखने के लिए होता रहा है।

राजस्थान में और बाकी देश में चमड़े के बहुत सारे छोटे-बड़े बाज़ार हैं। ऐसे बिचौलिये होते हैं जो जानवरों की खालों का धन्धा करते हैं और उन्हें हाट या स्थानीय साप्ताहिक बाज़ारों तक ले जाते हैं। वहाँ से दूसरे बिचौलियों द्वारा इन खालों को खरीदा जाता है, और उन्हें भरतपुर, चित्तौड़गढ़ और बाँसवाड़ा जैसे बड़े बाज़ारों तक ले जाया जाता है। राजस्थान में चमड़े को विभिन्न उत्पादों में बदला जाता है, और उनमें से कुछ उत्पादों को राज्य के बाहर के बाज़ारों तक भी पहुँचा दिया जाता है। राजस्थान के चमड़ा उत्पादों का राज्य व देश के भीतर और बाहर, दोनों जगह अच्छा बाज़ार है।

नमक

राजस्थान के मरुस्थल का पूर्वी भाग जो सांभर झील तथा पचपदरा की नमक की खान (बेसिन) से लगाकर कच्छ के रण (गुजरात) तक फैला है, नमक का उत्पादन करने वाले भारत के सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक है। क्या आप इन स्थानों को अपने दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं?

पचपदरा में नमक बनाया जाता है।

सांभर खारे पानी की झील है।

यह दुनिया की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है!

चित्रः नमक का उत्पादन, नमक के मैदान (सॉल्ट पैन)

ऐसे रिकार्ड मौजूद हैं जो यह दिखाते हैं कि 17वीं सदी में राजस्थान में नमक से बड़ी आमदनी की गई थी। उस वक्त पचपदरा में उत्पादित होने वाले नमक का लगभग आधा भाग राज्य द्वारा कर के रूप में ले लिया जाता था। यहाँ उत्पादित नमक को पश्चिमी और उत्तरी राजस्थान तथा पंजाब की अलग-अलग जगहों तक ले जाया जाता था। खरवाल नामक एक खास जाति के लोग नमक बनाते थे। बनिया जाति के व्यापारी अलग-अलग जगहों पर नमक खरीदते और बेचते थे। ऐसा माना जाता है कि बंजारा समुदाय के लोग बनियों के निर्देशों के अनुसार नमक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। इतिहासकार भदानी 17वीं सदी के राजस्थान का अध्ययन करते हुए लिखते हैं कि नमक से होने वाली आमदनी काफी अच्छी रही होगी जो इस तथ्य से समझ में आता है कि, बहुत सारे व्यापारी, जैसे कि बनिया और पालीवाल, पचपदरा और गोधानली के समीप बस गए थे।

आज राजस्थान देश में उत्पादित होने वाले नमक का 10 प्रतिशत पैदा करता है। पश्चिमी राजस्थान का भूमिगत जल खारा है। ज़मीन में गहरा गड्ढा (बोर) करके पानी को निकाला जाता है, और उसे विस्तृत सपाट ज़मीनों, जिन्हें नमक के मैदान (साल्ट पैन) कहते हैं, पर फैला दिया जाता है और सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। पानी वाष्पीकृत होकर उड़ जाता है और पीछे नमक रह जाता है। इसे इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर से ज़मीन में गड्ढा करके पानी निकालकर उसे फैला दिया जाता है। चूँकि यहाँ वर्षा बहुत कम होती है, इसलिए नमक के मैदानों के बह जाने का कोई डर नहीं होता। सांभर में झील के नमकीन पानी को वाष्पीकरण तालाबों में छोड़ दिया जाता है जहाँ नमक बनाया जाता है।

क्या आपको पता है कि नमक का उपयोग सबसे अधिक किसमें किया जाता है?

हाँ, खाने में।

नहीं। दुनिया में उत्पादित किए जाने वाले नमक का 60 प्रतिशत उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है।

हम यह तो जानते हैं कि नमक का इस्तेमाल चमड़े को शोधित करने में किया जाता है।

नमक के कुछ अन्य औद्योगिक उपयोगः

- कपड़ा उद्योग में नमक का इस्तेमाल रंगों को पक्का करने के लिए किया जाता है
- रबर उत्पादन में नमक का उपयोग रबर को रबर के दूध (लेटेक्स) से अलग करने के लिए किया जाता है
- धातु उद्योग में नमक का उपयोग अशुद्धियों को हटाने के लिए किया जाता है
- दवा उद्योग में नमक का इस्तेमाल गोली की पॉलिश (चिकना) करने में, नमक का घोल तैयार करने आदि में किया जाता है।
- साबुन बनाने में नमक का इस्तेमाल ग्लिसरॉल को पानी से अलग करने में किया जाता है

ऊन

भारत के ऊन उत्पादों का 40 प्रतिशत राजस्थान से आता है। ऊन का उपयोग परिधान, रजाइयाँ, कालीन, कम्बल और दीवारों के आवरण बनाने में किया जाता है। इसका उपयोग उद्योगों में वातानुकूलन, ध्वनि व कम्पन नियंत्रण तथा ताप विनिमय उपकरणों के लिए किया जाता है। इसका उपयोग चिकित्सा जगत में भी किया जाता है जैसे कि घावों की मरहम पट्टियाँ बनाने, और दाब पट्टियों (प्रैशर बैंडेज) के निर्माण में।

राजस्थान में, बीकानेर का ऊन बाज़ार, ऊन का सबसे बड़ा केन्द्र है जहाँ इसे साफ किया जाता है, तथा बेचा और खरीदा जाता है। यहाँ पर ऊन के व्यापार को शुरू हुए एक सदी से ज़्यादा समय हो चुका है। आसपास के इलाकों से गड़रिए कच्चा ऊन बीकानेर लाया करते थे जिसे व्यापारियों को बेचा जाता था। इसके बदले में उन्हें भोजन तथा रोजमर्रा की ज़रूरतों का सामान मिल जाता था। 1950 के दशक में बीकानेर में ऊन की गाँठें बनाने और दबाने की इकाइयाँ खोली गई थीं। इसने ऊन के लिए नए बाज़ार खुल गए, और इसे ब्रिटेन, सोवियत संघ तथा दूसरे देशों में निर्यात किया जाने लगा। 1960 के दशक में कताई की सबसे पहली इकाइयाँ शुरू की गईं और 1970 के दशक तक कताई बीकानेर में एक प्रमुख उद्योग बन गया था। बीकानेर को उसके श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले कालीनों के लिए जाना जाता है जो राजस्थान तथा देश के अन्य हिस्सों के रजवाड़ों में बड़े लोकप्रिय थे। बीकानेर ज़िले में पाई जाने वाली मग्रा जाति की भेड़ें चमकीला, सफेद ऊन पैदा करती हैं। कालीन शुरू में गाँवों में बनाए जाते थे और इनमें हाथ से गाँठें लगाई जाती थीं, लेकिन अब कस्बों और शहरों में ऊनी कालीन बनाने के कारखाने चल रहे हैं। इन कालीनों को अन्य देशों में निर्यात भी किया जाता है।

चित्रः ऊनी कालीन

3

राजस्थान में गर्मी और नमी

ऐसी कई भौगोलिक विशेषताएँ हैं जो पश्चिमी राजस्थान को एक मरुस्थल बनाती हैं। और मरुस्थल की जलवायु की अपनी अलग विशेषताएँ हैं जैसे कि तापमान में जबरदस्त बदलाव, दैनिक स्तर पर भी व मौसमी स्तर पर भी। शुष्कता के कारण मरुस्थल में तापमान के इन बदलावों के अनुभव काफी नाटकीय होते हैं – ये बदलाव अतियों का एक नाटक रच देते हैं।

राजस्थान में वर्षा इतनी कम क्यों होती है?

हर साल अरब सागर से आने वाली मानसूनी हवाएँ देश के अधिकांश भागों में वर्षा करवाती हैं। कुछ स्थानों में वर्षा अधिक होती है और कुछ में कम।

चित्रः वार्षिक वर्षा

400 सेमी से अधिक

200-400 सेमी

100-200 सेमी

40-100 सेमी

40 सेमी से कम

पहाड़ियों और पर्वतों के निकट के स्थानों पर अधिक वर्षा होती है।

पर यह पूरी तरह से सही नहीं है। सहयाद्रि पर्वतों के पश्चिम में अच्छी वर्षा होती है, पर उसके पूर्व में बहुत कम!

महासागर से आने वाली हवाओं में नमी होती है। उन्हें पश्चिमी घाटों या सहयाद्रि पर्वतों द्वारा रोक लिया जाता है। पर्वत की बाधा आने से हवाओं में विक्षोभ पैदा होता है और इससे बादल बनने में मिलती है। बादल उठते हैं, ठण्डे होते हैं और संघनित होकर वर्षा करते हैं। इन पर्वतों की पश्चिमी दिशा में बहुत अधिक बारिश होती है। जबकि सहयाद्रि पर्वत का पूर्वी भाग, जहाँ इतनी अधिक बारिश नहीं होती, 'वर्षा-छाया' क्षेत्र कहलाता है।

हिमालय पर्वत मानसूनी हवाओं को भी रोक देते हैं और इनके दक्षिणी भाग में अच्छी वर्षा होती है।

हिमालय पर्वतों की उत्तरी दिशा वर्षा छाया क्षेत्र है।

उत्तर-पूर्वी भारत में भी अच्छी वर्षा होती है।

अरावली पर्वतों को देखो। वहाँ पर तो इतनी बारिश नहीं होती। ऐसा क्यों?

वहाँ की स्थिति सहयाद्रि या हिमालय जैसी नहीं है।

वे बहुत ऊँचे पर्वत नहीं हैं।

और मानसूनी हवाएँ जिस दिशा में बहती हैं उसी दिशा में ये पर्वत भी फैले हैं।

तो शायद इसलिए ये पर्वत इन हवाओं को रोक नहीं सकते।

पर्यावरणविद अनुपम मिश्र लिखते हैंः

"अरावली पर्वत दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व तक फैले हैं। मानसूनी हवाएँ भी इसी दिशा में बहती हैं। तो बजाय अरावली

पर्वतों को पार करके पश्चिम में स्थित मरुस्थल पर पहुँचने के, ये हवाएँ इन पर्वतों के समानान्तर बहती हैं और वर्षा करती हैं। इस पर्वत ृंखला में स्थित सिरोही और आबू में अच्छी वर्षा होती है, करीब 150 सेमी। यह मात्रा राजस्थान में होने वाली औसत वर्षा का तीन गुना है। ये स्थान अरावली पर्वतों की अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में स्थित हैं, इसलिए वे मानसूनी हवाओं के सामने पड़ जाते हैं और इस तरह मानसूनी हवाओं का बचा हुआ खजाना भी खाली हो जाता है"।

तो हमें यह पता है कि राजस्थान में एक मरुस्थल है, जो थार मरुस्थल कहलाता है और यह पश्चिम में सिन्धु व सतलज नदियों तथा पूर्व में अरावली पर्वतों के बीच स्थित है। यह मरुस्थल 800 किमी लम्बा और 400 किमी चौड़ा है। थार मरुस्थल पाकिस्तान के सिंध और पंजाब प्रान्तों तक, तथा भारत के राजस्थान राज्य के पश्चिमी हिस्से तक फैला हुआ है।

राजस्थान के वे हिस्से जो अरावली पर्वतों की पूर्व दिशा में स्थित हैं, वहाँ ज़्यादा बारिश होती है।

दृश्यात्मक मानचित्र को देखें।

राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में हरियाली दिखती है। और यहाँ ज़्यादा खेती होती है।

बंगाल की खाड़ी से आने वाली मानसूनी हवाएँ यहाँ थोड़ी बारिश लाती होंगी।

मरुस्थल राज्य के पश्चिमी क्षेत्र में है। अरावली पर्वत और पूर्वी राजस्थान के क्षेत्र मरुस्थल नहीं हैं।

क्या राजस्थान हमेशा ही 'गर्म' जगह रहती है?

क्या राजस्थान गर्म जगह है?

सिर्फ उन जगहों पर जो भूमध्य रेखा पर और उसके आसपास स्थित हैं, साल भर लगभग एक ही तरह का मौसम रहता है। वे स्थान जो भूमध्य रेखा से दूर स्थित हैं, वहाँ उल्लेखनीय मौसमी बदलाव होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी होती है और शीत ऋतु में बहुत ठण्ड पड़ती है।

भारत में गर्मियों के कुछ सबसे ऊँचे तापमान राजस्थान में अनुभव किए जाते हैं। और यहाँ की सर्दियाँ भी काफी ठण्डी होती हैं। लेकिन दूसरे स्थानों के विपरीत, पश्चिमी राजस्थान में गर्मियों में भी रातें भी काफी सर्द होती हैं। ऐसा क्यों होता है?

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मरुस्थल की हवा में नमी बहुत कम होती है। नमी गर्मी को बाँधने में मदद करती है। इस क्षेत्र में पेड़ पौधे न के बराबर हैं। आकाश में बादल भी लगभग नदारद होते हैं। इसलिए दिन के समय सूरज धरती को झुलसा देता है। ज़मीन भट्टी जैसी तपने लगती है। पर रात के वक्त ऊष्मा सीधे वातावरण में विसर्जित हो जाती है जिससे मरुस्थल ठण्डा हो जाता है।

यदि नमी होती तो ऊष्मा उसमें कैद हो जाती।

और फिर रात को नमी ऊष्मा को छोड़ती जिससे रातें अपेक्षाकृत गर्म होतीं!

पर यहाँ नमी नहीं रहती, और इसलिए मरुस्थल में गर्मियों की रातें भी ठण्डी हो जाती हैं।

मरुस्थल की स्थिति की तुलना महासागरों या उष्ण कटिबन्धी जंगलों से करिए जिनमें भरपूर मात्रा में नमी होती है। महासागरों और जंगलों में सूर्य की ऊर्जा वाष्पीकरण में खर्च हो जाती है। इसलिए दिन के समय में अत्यधिक गर्मी नहीं होती। और जब नमी गर्मी को कैद कर लेती है तो वह गर्मी रात के वक्त मुक्त होती है, जिससे रातें गर्म हो जाती हैं।

ग्रीष्म ऋतु

राजस्थान में ग्रीष्म ऋतु मार्च में शुरू हो जाती है और अप्रैल, मई, जून में तापमान बढ़ता चला जाता है। अधिकांश जगहों पर, दिन का तापमान लगभग 40 डिग्री से. से 45 डिग्री से. तक पहुँच जाता है। गंगानगर में तापमान अक्सर 50 डिग्री से. तक चला जाता है। लेकिन रात के तापमान काफी हद तक गिर जाते हैं और लगभग 20डिग्री से. से 29 डिग्री से. तक

आ जाते हैं। गर्मियों में यहाँ धूल की आँधियाँ भी आ जाती हैं। इनके कारण अक्सर राजमार्गों पर दिखाई देने में दिक्कत होती है। कभी-कभी रेलमार्गों पर रेत जमा हो जाती है। दिन और रात के तापमानों में भी 10 से 20 डिग्री सेंटीग्रेड का अन्तर होता है, जो कि नीचे दी गई तालिका में देखा जा सकता है।

गर्मियों के तापमान

स्थान	अधिकतम तापमान (डिग्री से.)	न्यूनतम तापमान (डिग्री से.)
अजमेर	36.1	27.7
अलवर	37	24
बाड़मेर	43	27
भरतपुर	45	37
बीकानेर	41.8	28
बूँदी	43	35
चित्तौड़	43.8	23.8
जयपुर	45	25.8
जैसलमेर	41.6	25
जोधपुर	42.2	27.3
कोटा	42.6	29.7
सवाई माधोपुर	37	23
उदयपुर	38.3	28.8
भीलवाड़ा	45	28
राजसमंद	42	29
डूंगरपुर	42	25
टोंक	45	26
सिरोही	42	25
बाँसवाड़ा	40	24
प्रतापगढ़	44	26
बारन	45	20
दौसा	44	24
करौली	40	26
धौलपुर	42	30
हनुमानगढ़	41	28
नागौर	40.4	25.7
चुरू	41.7	25.1
जालौर	45	35
सीकर	40	27
झुंझुनू	34	23
झालावाड़	42	27
राजसमंद	44	19
पाली	38	29

नोटः यहाँ दिखाए गए अधिकतम और न्यूनतम तापमान औसत तापमान हैं। वास्तविक तापमान इनसे ज़्यादा भी जा सकते हैं। उदाहरण के लिए धौलपुर में 50 डिग्री से. तापमान भी दर्ज किया गया है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग का कहना है कि जब मैदानी इलाकों में किसी स्थान का सामान्य अधिकतम तापमान 40 डिग्री से. से अधिक हो, तो गर्म 'लहर' चलने लगती है। हर साल राजस्थान में इन गर्म लहरों से कई जानें जाती हैं। अधिकांशतः ऐसे लोगों की जान जोखिम में होती है जिन्हें ऐसी भीषण गर्मी का सामना करना पड़ता है और जिनके पास अत्यधिक तापमान से बचने के लिए आश्रय और बचाव के पर्याप्त साधन नहीं होते।

ऐसे ज़िले खोजें जिनका अधिकतम तापमान 40 डिग्री से. से कम हो। इन स्थानों पर ग्रीष्म ऋतु अपेक्षाकृत कम गर्म होती है। इन स्थानों पर तालिका में गोला लगाएँ। इन स्थानों में से एक अजमेर पर गोला लगा दिया गया है। इन स्थानों को नीचे दिए गए रूपरेखा मानचित्र (सटीक मापों के बजाय निरीक्षण द्वारा बनाया गया मानचित्र) में भी ढूँढिए। मानचित्र में उन सारे ज़िलों पर नीला बिन्दु लगा दीजिए। अब, 'ग्रीष्मकाल' नाम वाले बक्से पर एक नीला बिन्दु लगा दीजिए।

चित्रः धूल की आँधी में फँसे हुए लोग

राजस्थानः ग्रीष्मकाल, शीतकाल और वर्षा
वर्षा
अत्यन्त कम
बहुत कम
कम
मध्यम
अधिक
तापमान

ग्रीष्मकाल (अधिकतम तापमान 40 डिग्री से. से कम)

शीतकाल (न्यूनतम तापमान 10 डिग्री से. से अधिक)

शीत ऋतु

राजस्थान में जनवरी से मार्च तक शीत ऋतु रहती है। इस समय वहाँ मौसम बहुत ठण्डा होता है और सर्द हवाएँ चलती रहती हैं। नीचे दी गई तालिका से आपको राजस्थान के शीतकालीन के तापमानों का अन्दाजा लग जाएगा।

शीतकालीन तापमान

ज़िला	अधिकतम तापमान (डिग्री से.)	न्यूनतम तापमान (डिग्री से.)
अजमेर	23.3	5.5
अलवर	31	11
बाड़मेर	26	10
भरतपुर	31.7	7
बीकानेर	23.2	5
बूँदी	30.7	5
चित्तौड़	28.37	11.6
जयपुर	22	8.3
जैसलमेर	23.6	7.9
जोधपुर	27.5	9.5

कोटा	24.5	11.6
सवाई माधोपुर	29	9.1
उदयपुर	28.3	11.6
भीलवाड़ा	20	4
राजसमंद	28	10
डूंगरपुर	22	10
टोंक	22	8
सिरोही	20	11
बाँसवाड़ा	26	11
प्रतापगढ़	22	10.8
बारन	24	10.6
दौसा	29	4
करौली	24	10.2
धौलपुर	23	10
हनुमानगढ़	23	9
नागौर	22	6.7
चुरू	22.9	4.6
जालौर	28	4
सीकर	23	9
झुंझुनू	23	9
झालावाड़	25	9.5
राजसमंद	28	7.8
पाली	24	10

टिप्पणीः यहाँ दिखाए गए अधिकतम और न्यूनतम तापमान औसत तापमान हैं। वास्तविक तापमान इनसे ज़्यादा या कम हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, सर्दियों में कई स्थानों पर शून्य या उससे कम तापमान दर्ज किया गया है।

सर्दियों में, अक्सर सर्द हवाएँ उत्तर से राजस्थान में दाखिल हो जाती हैं जिससे तापमान कम हो जाता है और हल्की बारिश भी होती है। सुबह के घण्टों में धुन्ध और कोहरा छाया रहता है। ऐसी स्थिति 2-3 दिन तक चल सकती है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार जब सामान्य न्यूनतम तापमान 10 डिग्री से. या उससे कम होता है, तो हवाओं की ठण्डक तापमान को 5 या 6 डिग्री तक गिरा सकता है। कई बार यहाँ पर 24 घण्टे के भीतर ही तापमान में तेज गिरावट महसूस की जाती है। ऐसी स्थिति को 'शीत लहर' कहा जाता है। शीत लहर से लोगों को, पशुओं को और वन्य जीवों को न सिर्फ क्षति पहुँचती है, बल्कि उनकी मृत्यु भी हो जाती है। हर वर्ष राजस्थान में शीत लहर चलने से बहुत लोग मर जाते हैं। शीत लहर की ज़्यादा मार गरीब लोगों को झेलना पड़ती है जिनके पास सर छिपाने के, खाने-पीने के और पहनने-ओढ़ने के पर्याप्त साधन नहीं होते। कुहरे और धुन्ध के कारण साफ न दिखाई देने की वजह से इस समय रेल यातायात, सड़क यातायात और उड़ानों पर भी असर पड़ता है।

चित्रः अलाव जलाकर खुद को गर्म रखते लोग

कठोर सर्दियों का अर्थ होगा कि अधिकतम और न्यूनतम, दोनों तापमान अपेक्षाकृत कम होंगे।

जिसका अर्थ यह हुआ कि दिन और रात, दोनों तापमान अपेक्षाकृत कम होंगे।

और जहाँ सर्दियाँ हल्की होती हैं, वहाँ दिन और रात अपेक्षाकृत गर्म होंगे।

चित्र: चुरू की धुन्ध और कोहरे से भरी एक सुबह

ऊपर दी गई तालिका में ऐसे स्थानों को तलाशें जिनका शीत ऋतु में न्यूनतम तापमान 10 डिग्री से. से अधिक होता है। इन स्थानों में से एक, अलवर, पर तालिका में गोला खींच दिया गया है। ऐसे अन्य स्थानों को खोजें और उन पर भी गोला लगाएँ। अब इन स्थानों को रूपरेखा मानचित्र पर तलाशिए और ऐसे प्रत्येक ज़िले पर एक लाल बिन्दु लगा दीजिए। साथ ही 'शीतकाल' नाम वाले बक्से पर भी एक लाल बिन्दु लगा दीजिए।

वर्षा

जुलाई से सितम्बर तक राजस्थान में मानसून का समय होता है। ग्रीष्मकाल की गर्मी के बाद बारिश ठण्डक लाती है- तापमान गिर जाता है। हालाँकि राजस्थान में वर्षा बहुत अनियमित और अप्रत्याशित होती है। 2012 में, राजस्थान में पिछले तीस से भी ज़्यादा सालों की सबसे अधिक वर्षा हुई थी। इससे बाढ़ आ गई थी, तथा जल भराव की समस्या हो गई थी, जिसका असर ग्यारह ज़िलों में हुआ था। राहत और बचाव कार्यों के लिए थल सेना को बुलाना पड़ा था। जयपुर और सीकर सबसे अधिक प्रभावित ज़िले थे। जैसलमेर के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में 10 सेमी. से भी कम की न्यूनतम वार्षिक वर्षा होती है। नीचे राजस्थान के विभिन्न ज़िलों के वर्षा स्वरूप दिए गए हैं। इन्हें रूपरेखा मानचित्र में पहचानें और अलग-अलग रंगों की पहचान दें:

- अत्यन्त कम वर्षा - 15 सेमी से कम - जैसलमेर - भूरा रंग करें
- बहुत कम वर्षा - 20-30 सेमी - गंगानगर, बीकानेर, बाड़मेर, हनुमानगढ़ - नारंगी रंग करें
- कम वर्षा - 30-40 सेमी - नागौर, जोधपुर, जालौर, चुरू - पीला रंग करें
- मध्यम वर्षा - 40-80 सेमी - सीकर, टोंक, सिरोही, झुंझुनू, पाली, धौलपुर, करौली, राजसमंद, डूंगरपुर, दौसा, बाँसवाड़ा, अजमेर, अलवर, भरतपुर, बूँदी, चित्तौड़गढ़, जयपुर, सवाई माधोपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा - हल्का हरा रंग करें
- अधिक वर्षा - 80-100 सेमी - कोटा, झालावाड़, बारन, प्रतापगढ़ - गहरा हरा रंग करें

'वर्षा' शीर्षक के तले बने बक्सों को रंग दें। अब आपका वर्षा और मौसमी तापमानों का मानचित्र तैयार हो गया है।

राजस्थान में पश्चिम से पूर्व की ओर जाते हुए, वर्षा (बढ़ती है/ घटती है)।.....

चरम तापमान राजस्थान के (पश्चिमी/ पूर्वी) भाग में पाए जाते हैं।.....

ऐसे स्थान जहाँ चरम तापमान होते हैं वहाँ वर्षा भी (कम/ज़्यादा) होती है।.....

अरावली पर्वतों के दोनों ओर जलवायु का अनुभव अलग-अलग होता है।

माउण्ट आबू

अपने दृश्यात्मक मानचित्र को ध्यान से देखिए। क्या आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि पश्चिमी राजस्थान के अत्यधिक तापमानों वाली स्थिति माउण्ट आबू में क्यों नहीं पाई जाती?

राजस्थान के पश्चिमी भाग में होने के बाद भी माउण्ट आबू वर्षा और तापमान के सन्दर्भ में एक अपवाद है। यहाँ तापमान कम रहता है और बारिश अधिक होती है।

	ग्रीष्मकाल (डिग्री से.)	शीतकाल (डिग्री से.)
अधिकतम	33.8	28.3
न्यूनतम	23.8	11.6

यहाँ वार्षिक वर्षा 163.8 सेमी होती है, राजस्थान में सबसे ज़्यादा

आप यह देख सकते हैं कि माउण्ट आबू में गर्मियाँ काफी सुखद होती हैं और सर्दियाँ ठण्डी होती हैं। ऐसा भी हुआ है जब सर्दियों का तापमान शून्य से नीचे चला गया है। आइए हम यह देखें कि बाकी राजस्थान की तुलना में माउण्ट आबू में तापमान और वर्षा के स्वरूप भिन्न क्यों हैं। अध्याय की शुरुआत में हमने वर्षा पर पर्वतों के असर की चर्चा की थी। माउण्ट आबू अरावली पर्वतों के अन्य भागों की तुलना में अधिक ऊँचाई पर है। इस वजह से यहाँ मानसूनी हवाएँ ऊपर उठती हैं और संघनित होकर वर्षा लाती हैं।

जैसे-जैसे हम मैदानों से ऊपर की ओर चलते हैं, हवा ठण्डी होती जाती है।

ग्रीष्मकाल में भी पहाड़ियों पर ठण्डक होती है।

ऐसा क्यों होता है?

हमारे ऊपर जाते जाने के साथ-साथ मौसम को तो गर्म होते जाना चाहिए क्योंकि हम सूरज के और पास पहुँचते जाते हैं। है कि नहीं?

पृथ्वी कैसे गर्म हो जाती है? सौर विकिरण वातावरण में से गुजरकर पृथ्वी की सतह तक पहुँचता है। पृथ्वी की सतह पर ज़मीन और पानी सौर विकिरण को अवशोषित कर लेते हैं। फिर यही अवशोषित ऊष्मा वातावरण में गर्मी के रूप में उत्सर्जित हो जाती है। यही विकिरण हवा को गर्म बनाता है।

तो हवा का गर्म होना अधिकांशतः पृथ्वी की सतह से होता है!

जैसे-जैसे आप ऊँचाइयों की ओर जाते हैं, वैसे-वैसे आप ताप के स्रोत से दूर होते जाते हैं।

तो इस तरह मैदान पहाड़ियों की तुलना में अधिक गर्म होते हैं।

मानसून के बाद

अक्टूबर से दिसम्बर तक, राजस्थान में मध्यम स्तर का तापमान रहता है। दिन का तापमान औसतन 33 डिग्री से. से 38 डिग्री से. तक, और रात का तापमान 18 डिग्री से. और 20 डिग्री से. के बीच रहता है।

किसी भी स्थान का तापमान विभिन्न कारकों का परिणाम होता है।

उनमें से एक महत्वपूर्ण कारक है नमी।

हाँ। नमी के होने से तापमान मध्यम स्तर पर रहता है।

ऊँचाई भी तापमान को प्रभावित करती है जैसा कि हमने माउण्ट आबू के सन्दर्भ में देखा।

4

राजस्थान का जनजातीय समाज

समय के साथ सामाजिक संरचनाओं में आए बदलावों के कई भौगोलिक सन्दर्भ और भौगोलिक निहितार्थ होते हैं। इन बदलावों में मानव समाज का प्रकृति के साथ बदलता सम्बन्ध तो शामिल है ही, पर साथ ही समाज के भीतर भी लोगों के बीच असमानता भरे रिश्तों का धीरे-धीरे विकसित होना भी शामिल है। इसके अलावा, भौगोलिक दायरे, सीमाओं और लोगों के स्वामित्वों के रूप भी धीरे-धीरे विकसित हुए। और इन परिवर्तनों के हमारी जिंदगियों पर गहरे सामाजिक भौगोलिक प्रभाव रहे और आज भी हैं।

जनजातीय समाज के लोग, जिनमें आज भी प्रारम्भिक मानव समाज के कुछ लक्षण देखने को मिलते हैं, अब अधिकांशतः पहाड़ियों और पर्वतों में रहते हैं। ऐसे भौगोलिक स्वरूपों के पीछे क्या कारण हैं? और जनजातीय समाज, जातीय समाज तथा राज्य के बीच के विभिन्न रिश्तों के माध्यम से प्रगट होने वाला सामाजिक भूगोल क्या है?

प्रारम्भ में मनुष्य शिकार और संग्रह करके जीवन बिताता था और इस सामाजिक संरचना को 'टोली' कहा जाता है। टोली के लोग एक जगह से दूसरी जगह तक जाते थे और उनमें इलाकों या सीमाओं का बोध कम से कम था। शिकार करने के बाद वे उसे आपस में बाँट लेते थे। टोली में लोगों के बीच सामाजिक सम्बन्ध भी बहुत कम होते थे।

कुछ जानवरों को मारना और उनका मांस खाना वर्जित माना जाता था। कुलचिह्नों को मानने की प्रथा दुनियाभर के प्रारम्भिक मानव समाजों की एक आम विशेषता थी।

शब्दकोष के अनुसार कुलचिह्न कोई प्राणी, वस्तु या चिह्न होता है, जो किसी पशु या पौधे को निरूपित करता है, और जो लोगों के किसी समूह के प्रतीक का काम करता है।

जैसे कि साँप, कछुआ, मोर..

बाज, मछली, भालू, बन्दर..

और कई तरह के पौधे।

मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्धः खाद्य उत्पादन

लगभग 10,000 साल पहले मनुष्यों ने ज़मीन में बीज बोना शुरू किया जिससे फसलें और अनाज पैदा हुए। और इसी से धीरे-धीरे फसलों की खेती का विकास हुआ। लगभग इसी समय उन्होंने जानवरों को पालना शुरू किया।

इसलिए खाने की तलाश के लिए इधर-उधर भटकने की ज़रूरत कम हो गई होगी।

हाँ। मनुष्य खाद्य पदार्थों को पैदा करने लगा था।

इससे खेतों और गाँवों का विकास होने लगा। प्रचुर मात्रा में पानी तथा उपजाऊ मिट्टी की उपलब्धता वाली नदी घाटियाँ खेती के लिए सबसे उपयुक्त थीं। शिकार-संग्रहण की तुलना में खेती ने लोगों के लिए एक ज़्यादा 'स्थाई' जिन्दगी मुमकिन बना दी। और यहीं से जनजातीय समाज के बनने की शुरुआत हुई।

चित्रः पानी ज़मीन की ढाल की वजह से ऊँची भूमियों से नीचे की ओर बहता है। पर मैदानों में ढाल कम होती है और पानी ज़्यादा समय तक रुका रहता है और इसलिए मिट्टी में वह पानी रिसकर पहुँच जाता है। यह ज़मीन के नीचे संग्रहित हो जाता है। हम इस संग्रहित पानी को कुँओं के माध्यम से बाहर निकालते हैं।

समाज का टोलियों से जनजातियों में रूपान्तरण होने के कई भौगोलिक निहितार्थ थेः

1. मनुष्य और प्रकृति के रिश्तों में खाद्य पदार्थों के उत्पादन और पशुओं को पालतू बनाने के द्वारा बदलाव आया।

2. खेती के लिए ज़्यादा लोगों की आवश्यकता पड़ी। सामाजिक बन्धनों और एकजुटता में वृद्धि के माध्यम से सामाजिक रिश्तों में बदलाव आया।

चाहे शिकार और संग्रहण हो या खेती, भवन निर्माण, बच्चों का पालन-पोषण या कोई उत्सव मनाना हो, किसी जनजाति में इन गतिविधियों को एक साथ मिलकर एक समुदाय के रूप में किया जाता है। जैसा की शेरीन रत्नागर ने कहा हैः 'जब लोगों के बीच निरन्तर सहयोग होता है तभी खेतिहर समाज फलता-फूलता है।'

3. स्थानिक-सामाजिक रिश्ते संसाधनों के साझे स्वामित्व की ओर बढ़ने लगे।

जनजातीय समाज में कोई निजी सम्पत्ति नहीं होती, तथा प्रकृति की और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की एक साझा समझ होती है। उदाहरण के लिए, जनजातीय नृत्य आपसी दोस्ती और एकजुटता का प्रदर्शन होते हैं। और उनकी धार्मिक समझ प्रकृति की पूजा की होती है।

4. जनजातीय समाज में स्त्रियों की एक खास जगह होती है क्योंकि वे बच्चों को जन्म देती हैं। ऐसे समाजों में लोग मातृ देवी की आराधना करते हैं। ऐसा महिलाओं द्वारा बच्चों को जन्म देने के विशेष गुण के कारण है। कई जनजातियों में तो वंशानुक्रम का पता माँ और मातृ पक्ष के पूर्वजों के माध्यम से लगाया जाता है जबकि कई जनजातियों में पिता के माध्यम से ऐसा किया जाता है।

खाद्य पदार्थों के उत्पादन से राज्य के निर्माण तक

समय के साथ खाद्योत्पादन की सघनता बढ़ती गई। धीरे-धीरे मनुष्य ने बहुत से विकास किए जैसे हल का निर्माण, खेतों पर काम करने के लिए और कुँओं से पानी निकालने के लिए जानवरों का उपयोग, बीजों का चुनाव और खाद का उपयोग करना।

हल को शुरुआत में मनुष्यों द्वारा खींचा जाता था, पर बाद में इसके लिए जानवरों का उपयोग किया जाने लगा। हल का उपयोग मिट्टी की ऊपरी परत को ढीला करने के लिए किया जाता है; इससे खेती करना आसान हो जाता है। मिट्टी सरन्ध्र (पोली) हो जाती है और आसानी से पानी सोख लेती है।

इन सभी परिवर्तनों से बहुत अधिक मात्रा में अनाज तथा अन्य खाद्य पदार्थों का उत्पादन सम्भव हुआ। ये अनाज और खाद्य पदार्थ कुछ प्रभुत्वशाली लोगों द्वारा ले लिए जाते थे और इन पर उन्हीं का नियंत्रण रहता था। इस उपज को संग्रह किया जा सकता था और उस पर स्वामित्व स्थापित किया जा सकता था। इस प्रकार सम्पत्ति का निर्माण हुआ। इसे 'अधिशेष' उत्पादन कहा जाता है। और इससे आगे और भौगोलिक बदलाव आए। करीब 2500 साल पहले साझा स्वामित्व की परम्परा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। पहले लोग सब कुछ साझा करते थे। पर अब हालाँकि बहुत सारे लोग काम करते थे, पर कुछ थोड़े से लोग समृद्ध और शक्तिशाली हो गए तथा संसाधनों पर उन्हीं का नियंत्रण हो गया था। इसी दौर में राज्यों की उत्पत्ति भी शुरू हो गई थी।

समाज का जनजातियों से राज्यों में रूपान्तरण होने से कई महत्वपूर्ण भौगोलिक बदलाव सामने आएः

1. सीमाओं और अधिकार क्षेत्रों के रूप में स्थानिकता का महत्व बढ़ता गया। अधिकार क्षेत्रों को लेकर लड़ाइयाँ होने लगीं – और इस तरह राज्यों ने सेनाएँ रखना शुरू कर दिया। स्थायी सेनाएँ बनाने के लिए कुछ लोगों को खेती के काम से अलग कर सेना में शामिल किया जाने लगा।

इससे यह सुनिश्चित हो गया कि खाद्योत्पादन में व्यवधान नहीं पड़ेगा।

और सेना अपने अधिकार क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित कर सकती थी।

सेना का उपयोग और ज़्यादा क्षेत्रों को जीतने में तथा अन्य राज्यों द्वारा आक्रमण किए जाने की स्थिति में अपने राज्य की रक्षा करने के लिए किया जा सकता था।

राजा के लिए सेना रखना ज़रूरी था और वह एक ऐसी जीवनशैली अपनाने की कोशिश करता था जो बाकी लोगों

से भिन्न हो। इन सभी उद्देश्यों के लिए सम्पत्ति की ज़रूरत थी।

2. सामाजिक सम्बन्धों में बराबरी खत्म हो गई। खेती तथा अन्य गतिविधियों से होने वाले अतिरिक्त उत्पादन को राजा द्वारा कर के रूप में लिया जाने लगा। इस कार्य के लिए अलग से कुछ लोग नियुक्त किए गए। ये लोग आम लोगों से ज़्यादा शक्तिशाली हो गए।

बाध्य होकर किया गया स्थानान्तरण

भले ही ऊपर उल्लिखित बदलाव मानव समाज में हुए भौगोलिक और ऐतिहासिक रूप से हुए, पर ऐसा नहीं है कि ये बदलाव दुनियाभर में सभी जगहों पर हुए। आम तौर खाद्योत्पादन नदी घाटियों में बहुत अधिक था और यहाँ पर जनजातीय अर्थव्यवस्था खेती, पशुपालन और चरवाही, मछली पकड़ने, शिकार और संग्रह करने का मिलाजुला स्वरूप थी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था जंगलों पर भी निर्भर करती थी।

आखिर क्यों ये जनजातीय समाज आज भी अधिकांशतः जंगलों में रहते हैं?

बाद में जनजातीय जीवन के स्थान पर राज्यों के अस्तित्व में आने के बाद ये राज्य अपने अधिकार क्षेत्रों को बढ़ाने का प्रयास करने लगे। छठी शताब्दी ई.पू. तक विशाल राज्यों की स्थापना शुरू हो गई थी। जब इन राज्यों ने भौगोलिक विस्तार करने की कोशिश की तो स्थानिक संघर्षों का जन्म हुआ। ऐसे समुदायों के साथ संघर्ष होते थे जो या तो किसी अन्य राज्य का हिस्सा होते थे या जनजातीय समाज का हिस्सा होते थे। इन संघर्षों से कई स्थितियाँ पैदा हुई होंगीः (1) किसी क्षेत्र में पहले से रह रहे समुदाय ने लड़ाई जीत ली और वहाँ रहना जारी रखा (2) वह समुदाय लड़ाई हार गया – उसके खेत और उसके लोगों को बन्धक बना लिया गया। बन्धक बनाए गए लोग विजयी लोगों के दास बना दिए गए। (3) ये समुदाय अपनी सुरक्षा के लिए अन्य स्थानों को चले गए। जब तीसरी स्थिति सामने आई तो जनजातियों ने अक्सर ऊँचाई पर स्थित स्थानों में आश्रय खोजा, उन नदी घाटियों से दूर जहाँ वे पहले रह रहे थे। और इसका मतलब था एक ऐसी सामाजिक और स्थानिक गतिशीलता जो आक्रमणकारी राज्यों ने उनके ऊपर लाद दी थी।

तो उन्हें मजबूर होकर ऊँची भूमियों पर जाना पड़ा।

वे स्थान अधिकांशतः वनभूमियाँ रही होंगी।

लेकिन पहाड़ियाँ और पर्वत, नदी घाटियों के विपरीत खेती के लिए अच्छे नहीं रहे होंगे, क्योंकि यहाँ पानी रुकता नहीं है बल्कि नीचे को बह जाता है।

इसके अलावा खेती हेतु ज़मीन को साफ करने के लिए जंगल के पेड़ों को काटना ज़रूरी रहा होगा।

यह करना आसान नहीं रहा होगा।

आज हमारे पास पेड़ों को काटने के लिए मशीनें हैं।

पर उन दिनों में ऐसा नहीं था।

इसलिए वे लोग बहुत कम खेती कर पाए।

और इसीलिए अपनी बहुत सारी ज़रूरतों के लिए वे जंगलों पर निर्भर करते हैं।

राज्य के समाजों में सामाजिक-भौगोलिक बदलाव

राज्य में रहने वाले समाजों में समृद्ध लोग अपनी सम्पत्ति अपने बच्चों को दे जाते थे। वह सम्पत्ति कभी भी परिवार के बाहर के लोगों के पास नहीं जाती थी। वे अपनी चीज़ों को सभी लोगों के साथ नहीं बाँटते थे और सिर्फ अपने परिवार के साथ बाँटते थे। इस प्रकार परिवार बहुत महत्वपूर्ण हो गया। और इससे समाज में स्त्रियों की भूमिका बदल गई। अब जमींदार परिवारों की महिलाओं से केवल अपने बच्चों और परिवार पर ध्यान देने की अपेक्षा की जाने लगी। सम्पत्ति पर पुरुषों का नियंत्रण बढ़ता गया। वंशानुक्रम को पिता से पहचाना जाने लगा, और इस प्रकार जनजातीय समाज की तुलना

में यहाँ परिवार पर पुरुषों का नियंत्रण अधिक हो गया था।

किसी राज्य की संरचना के भीतर का समाज किसी जनजातीय समाज से किस प्रकार भिन्न होता है?

लोगों में दासों और स्वामियों के रूप में विभाजन हो गया।

काम भी पुरुषों के काम और महिलाओं के काम में विभाजित हो गए।

समाज में अमीर और गरीब लोग होना शुरू हो गए।

फसलोत्पादन के अलावा, लोग गीली मिट्टी, लकड़ी, बाँस और चमड़े से भी कई वस्तुएँ बनाने लगे। कौन क्या काम करता था? ताकतवर वर्ग के लोगों के पास ज़मीनें और सम्पत्ति थी, तथा समाज का गठन श्रम के विभाजन के माध्यम से होने लगा। ये बदलाव दुनिया के कई हिस्सों में हुए। पर भारत में यह विभाजन दुनिया के किसी भी अन्य भाग की तुलना में अधिक जटिल था। यहाँ कुम्हार का लड़का कुम्हार का काम ही कर सकता था; मोची का बेटा मोची ही बन सकता था; कोई व्यक्ति क्या काम करेगा यह इस बात से तय होता था कि उसके माता-पिता क्या करते थे। सभी समूहों को ऊँची और नीची श्रेणियों के क्रम में बाँट दिया गया था। इसे ही 'जाति व्यवस्था' कहा जाता है। और पुरुष एवं स्त्री अपनी ही जाति में शादी कर सकते थे। यदि लोग अन्य जातियों में शादी करते, तो जाति व्यवस्था बची न रह पाती! इस तरह सामाजिक दायरे बहुत संकुचित और जटिल हो गए।

कोई व्यक्ति जिन्दगी में क्या कर सकता था यह उसके जन्म से ही तय हो जाता था। अगर किसी बढ़ई के परिवार में कोई लड़का हुआ तो उसे बढ़ई का काम ही करना पड़ेगा। यदि लड़की हुई तो उसे घर के कामकाज करना पड़ेंगे। अगर तथाकथित 'नीची' या साधनहीन जाति में कोई लड़की पैदा होती तो वह घर का कामकाज तो करती, पर साथ ही उसे खेतों में भी काम करना पड़ता। और तथाकथित नीची जाति के लोग इसलिए गरीब रहते क्योंकि सम्पत्ति पर हमेशा सुविधा सम्पन्न जातियों का अधिकार रहता था।

जनजातीय समाज में लोगों का एक दूसरे के साथ लगभग बराबरी का नाता होता था।

जनजाति के कुछ मुखिया होते थे और उन्हें दूसरे लोगों के ऊपर कुछ विशेष शक्तियाँ मिली होती थीं।

लेकिन जाति प्रथा और पुरुषों के प्रभुत्व के द्वारा जो गहरी सामाजिक खाइयाँ पैदा हुईं वे जनजातीय समाज का हिस्सा नहीं थीं।

अलग-अलग तरह के इन समाजों का भौगोलिक रूप से सह-अस्तित्व था। कई जगह तो जनजातीय समाज और राज्य के बीच विशिष्ट रिश्ते थे। अक्सर जनजातीय लोग नमक और कपड़े जैसी वस्तुओं के बदले में राज्यों को विभिन्न प्रकार के वनोत्पाद देते थे। ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ राजाओं ने इस तरह के लेन-देन के लिए उनकी अगवानी की थी। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ जनजातीय समाज ने राजाओं को युद्ध और संघर्षों के समय में सहयोग दिया था।

आज जनजातीय समाज जिन भौगोलिक स्थानों पर रहता है उन पर राज्य तथा निजी कम्पनियों की गतिविधियों द्वारा लगातार खतरा मंडराता रहता है। ये सम्बन्ध ही आज जनजातीय समाज की प्रकृति को परिभाषित करते हैं। इन सम्बन्धों की नीचे दिए गए खण्डों में पड़ताल की गई है।

कई लोग 'जनजाति' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहते क्योंकि इसे पिछड़ेपन के द्योतक के रूप में देखा जाता है।

शिरीन रत्नागर लिखती हैं:

शहर की जिन्दगी और लेखन जनजातीय जीवन के लक्षण नहीं हैं, इसलिए नहीं क्योंकि कुछ समूह स्वाभाविक रूप से 'पिछड़े' थे, बल्कि इसलिए क्योंकि जनजातीय समाज में कुलीन लोग, सामाजिक ऊँच-नीच के क्रम तथा प्रशासन की संस्थाएँ नहीं होतीं जिनके लिए लिखित दस्तावेजों की ज़रूरत उत्पन्न होती है, और जो सामाजिक जटिलता व श्रम के विभाजन को सम्भव बनाते हैं, जो कि शहरीकरण का मूल आधार है। दुनिया में, साक्षरता ऐसी विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों में उभरी है जहाँ कुछ खास तरह की राज संस्थाएँ अस्तित्व में आई हैं।

राज्य द्वारा दी गई परिभाषा में 'अनुसूचित जनजाति' वे लोग हैं जो आदिम जीवनशैली से रहते हैं और सामान्यतः सभी प्रकार से पिछड़े हुए हैं। पर यह परिभाषा इसलिए बनाई गई ताकि ऐसे लोगों को आम समाज में शामिल किया जा सके और उन्हें शोषण से बचाया जा सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि जनजातीय समाज पिछड़ा हुआ है।

जनजातीय समाज के लिए अक्सर 'आदिवासी' शब्द का उपयोग क्यों किया जाता है?

आदिवासी शब्द 1930 के दशक में गढ़ा गया था जिसका अर्थ है कि ये लोग इस भूमि के मूल निवासी थे। यह दिखाता है कि अतीत में वे स्वायत्त थे पर उनकी इस स्वायत्तता को भारत में ब्रिटिश शासन ने भंग कर दिया।

आज आदिवासी समूह और संगठन ज़मीन की माँग कर रहे हैं। चूँकि उन लोगों में निजी स्वामित्व की सोच नहीं थी, और अपना साझा स्वामित्व दिखाने के लिए उनके पास कोई दस्तावेज भी नहीं होते, इसलिए उनकी ज़मीनों पर अक्सर दूसरे लोग अधिकार कर लेते हैं। गैर आदिवासी समाजों के खेतिहर विस्तार के द्वारा, तथा बाँध व नगर निर्माण जैसे विकास के कामों के द्वारा ऐसा किया जाता है। इस तरह से यह जनजातीय समाज अक्सर अपनी ज़मीन से हाथ धो बैठता है।

राजस्थान में जनजातीय समाज कहाँ रहता है?

राजस्थान में जनजातीय समाज अरावली पर्वतमाला की ऊँची भूमियों पर तथा विंध्य पर्वतों की निचली पहाड़ियों पर रहता है। आप अरावली पर्वतमाला को अपने दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। विंध्य पर्वत ृंखला अधिकांशतः मध्य प्रदेश में फैली हुई है; सवाई माधोपुर का रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान राजस्थान में अरावली तथा विंध्य पर्वत ृंखलाओं के संधि-स्थल पर स्थित है।

राजस्थान के जनजातीय समाज में भील, मीणा, सहरिया, गडिया लोहार, दामोर, कथोड़ी, मियो, सांसी, कंजर, बंजारा और राबारी समुदायों के लोग शामिल हैं, जो मिलकर राज्य की कुल जनसंख्या का 12 प्रतिशत होते हैं।

जनजातीय समाज के 97 प्रतिशत से अधिक लोग रूपरेखा मानचित्र में छायाँकित किए गए ज़िलों में रहते हैं। ये मुख्यतः मीणा, सहरिया, गरसिया और भील समुदाय के लोग हैं। मीणा और सहरिया समुदाय सबसे बड़े जनजातीय समूह हैं।

आप रूपरेखा मानचित्र से यह पता लगा सकते हैं कि सहरिया समुदाय मैदानी इलाके में रहता है न कि पहाड़ियों में। भील और गरसिया लोग अधिकांशतः पहाड़ियों में रहते हैं। मीणा समुदाय के लोग पहाड़ियों व मैदानों, दोनों जगह रहते देखे जाते हैं।

चित्रः राजस्थान में जनजातीय समुदाय

भौगोलिक विस्थापन

अधिकांश मामलों में जबरदस्ती हुए विस्थापन जनजातीय समुदायों के भूगोल का विशेष लक्षण होते हैं। इसके कारण उनके सामाजिक और स्थानिक सम्बन्ध खास तरीकों से विकसित हुए हैं। उनके उत्पादन के साधन, समाज के भीतर और दूसरे समाजों के साथ उनके सामाजिक रिश्ते विस्थापनों से प्रभावित रहे हैं।

मीणा समुदाय

मीणा समुदाय ने बहुत पहले, आज के जयपुर के आसपास के क्षेत्र में राजस्थान की सर्वाधिक उपजाऊ ज़मीनों पर अधिकार कर लिया था। मीणा लोग अपनी उत्पत्ति को उन लोगों से जोड़ते हैं जिन्होंने छठी शताब्दी ई.पू. में इस क्षेत्र में मत्स्य जनपद की स्थापना की थी। जब इस क्षेत्र में लोगों व शासकों के अलग-अलग समूह आने लगे, तो उनके मीणा समुदाय के साथ संघर्ष हुए जिनमें कभी मीणा लोग हारे तो कभी जीते। 300 ई.पू. के बाद इन्हें शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य के आगे घुटने टेकने पड़े।

16वीं सदी ईसवीं में कचवाहा राजपूतों ने मीणा समुदाय से लड़ने में मुगलों की मदद की थी। जब ब्रिटिश लोग इस क्षेत्र में आए तो मीणा समुदाय ने बहादुरी से उनका मुकाबला किया। ब्रिटिश लोग उनसे काफी नाराज थे और उन्होंने मीणा समुदाय को ब्रिटिश प्रशासन द्वारा जारी किए गए पार-पत्र (पास) के बिना मेवाड़ के घाट के ऊपरी स्थानों तक आने से

रोक दिया था। 1846 में ब्रिटिश सरकार ने मीणा समुदाय को डकेत घोषित कर दिया, और साथ ही उन्हें पकड़वाने में मदद करने वाले लोगों को नौकरियाँ देने का वादा भी किया। 1868 में इस क्षेत्र में अकाल पड़ा। चूँकि खाने को कुछ नहीं था इसलिए लोग अक्सर दूसरों के पशु चुरा लेते थे। और उनके खिलाफ इस बात का अभियोग लगता था। ब्रिटिश हुकूमत मीणा समुदाय को सन्देहपूर्वक देखती थी और उन लोगों को नियमित रूप से चौकियों या नाकों पर हाजिरी देना पड़ती थी, ताकि प्रशासन उनकी गतिविधियों पर नज़र रख सके।

जनजातियों पर अपराधी होने का ठप्पा लगाना

ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार का विरोध करने वाले सभी लोगों को, और खास तौर से उन्हें जिन्होंने हथियारों का सहारा लिया, अपराधी करार दे दिया जाता था। 1871 तक ब्रिटिश हुकूमत ने आपराधिक जनजातियों की सूची तैयार कर दी थी। ब्रिटिश प्रशासन द्वारा इन लोगों को नियंत्रित करने के लिए एक कानून पारित किया। इस कानून के तहत इन लोगों को नज़रबन्द रखा जा सकता था और बहुत कम मज़दूरी देकर उनसे काम कराया जा सकता था। जी. एन. देवी लिखते हैं कि भारत में करीब 6 करोड़ लोग ऐसे हैं जिन पर आपराधिक जनजाति का ठप्पा लग चुका है और इनके इतिहास को ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के वक्त से जाना जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने ऐसे समुदायों को अपराधी बताने वाली अधिसूचना को वापस ले लिया। लेकिन चूँकि ब्रिटिश प्रशासन ने पुलिस बल को तथा आम लोगों को इन समुदायों को 'जन्मजात बदमाश' के रूप में देखने के लिए प्रेरित किया था, इसलिए इन लोगों के प्रति आज तक प्रायः यही रवैया बना हुआ है। उन्हें ब्रिटिश शासन के समय ही अपनी ज़मीनों से तो बेदखल कर ही दिया गया था, पर ब्रिटिश हुकूमत से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भी, उन्हें उनकी ज़मीनें वापस नहीं मिली हैं।

आप देख सकते हैं कि मीणा समुदाय के लोगों को कई लड़ाइयाँ लड़ना पड़ीं और अक्सर उन्हें अपनी वे उपजाऊ ज़मीनें छोड़ना पड़ीं जहाँ वे शुरू में रहे थे। पर उनमें से कुछ लोग खेती करना जारी रख पाए हैं। करौली, सवाई माधोपुर और जयपुर ज़िलों में ये लोग पिछले 400 सालों से खेती कर रहे हैं। इनमें से कई लोगों के पास अपनी ज़मीनें हैं और इसलिए उन्हें ज़मींदारी मीणा कहा जाता है। वे लोग जो पहाड़ियों पर भाग गए थे उन्होंने भील समुदाय के लोगों से दोस्ती कर ली। इन्हें भील मीणा कहा जाता है। मीणा समुदाय के कुछ लोग सेना में लड़े। मीणा समुदाय आज भौगोलिक रूप से कोई एकजुट समूह नहीं रह गया है। कई मीणा लोग पड़ोसी राज्यों, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में रहते हैं और विभिन्न प्रकार के व्यवसायों और पेशों में लगे हुए हैं।

चित्रः मीणा स्त्री द्वारा दीवार पर बनाई गई 'मन्दाना' चित्रकारी। मन्दाना चित्रकारी गाँव के घरों की मिट्टी की दीवारों पर चावल के आटे से बनाई जाती है। इनमें रोज़मर्रा की घटनाओं, उत्सवों और सामाजिक विषयों को दर्शाया जाता है।

भील समुदाय

भील समुदाय दक्षिणी राजस्थान से पश्चिमी मध्य प्रदेश तक फैले पहाड़ी इलाके में तथा गुजरात के लगे हुए क्षेत्रों में रहता है। इस समुदाय के कुछ लोग गाँवों और कस्बों में भी दिखाई देते हैं। उनके उत्पादन के साधन हैं जंगलों से गोंद, शहद और जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करना, तथा छोटे स्तर पर खेती करना। इनमें से कई लोग गैर-आदिवासी किसानों की ज़मीनों पर खेतिहर मज़दूर के रूप में भी काम करते हैं। धनुर्विद्या में उनकी विशेषज्ञता से सब परिचित हैं। महाभारत का किरदार 'एकलव्य' एक भील युवा ही है। उनका प्रमुख त्यौहार, बनेश्वर का मेला, डूंगरपुर के पास लगता है।

गरासिया समुदाय

गरासिया समुदाय को राजपूत समुदाय का एक भाग माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि जब तुर्क सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने गरासिया लोगों को पराजित कर दिया था, तो इन लोगों ने भील क्षेत्रों में पनाह ली थी और उन पर नियंत्रण स्थापित कर लिया था। उनकी भाषा डूंगरी गरासिया कहलाती है। ये एक छोटा समुदाय है और भीलों की तरह, ये भी थोड़ी खेती करते हैं, जानवर और मुर्गियाँ पालते हैं और खेतिहर मज़दूरों के रूप में काम करते हैं। वे थोड़ा लकड़ी काटने और शिकार का काम भी करते हैं। वे खेती से जुड़े उपकरण बनाते हैं और उनकी मरम्मत का काम भी करते हैं। भीलों की तरह ही ये लोग भी वनोत्पाद जैसे गोंद, शहद और औषधीय पौधे इकट्ठा करते हैं और उन्हें बाज़ारों

में बेचते हैं। ये लोग अरावली पर्वत ृंखला की ढालों पर बने मकानों में रहते हैं। मक्का इन लोगों का प्रमुख भोजन है।

मियो समुदाय

मियो समुदाय अलवर और भरतपुर ज़िलों में रहता है और उनकी भाषा मेवाती है। ये लोग इस्लाम धर्म को मानने वाले हैं और इन पर सूफी संतों का प्रभाव रहा है।

सूफी संत कौन हैं?

सूफी संत सादा और सरल जीवन जीते थे, और सम्पत्ति तथा सत्ता का संग्रह नहीं करते थे।

बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों की जीवनशैली भी इसी ढंग की थी।

सूफी सम्प्रदाय में यह माना जाता था कि ईश्वर के साथ एका बनाए रखने से खुद का बोध महत्वहीन हो जाता है। 8वीं सदी ईसवीं में इस्लाम एक ताकतवर सम्प्रदाय बनता जा रहा था और उसके कर्ताधर्ता भौतिक तथा राजनैतिक मामलों में ज़्यादा से ज़्यादा रुचि लेने लगे थे। यह बात मुहम्मद की जिन्दगी की सादगी के एकदम विपरीत थी। इसीलिए सूफी सम्प्रदाय एक नए विचार के रूप में उभरा जिसने उसी सादगी तथा ईश्वर के प्रति प्रेम और लगन को जीवन में फिर से स्थापित करने की कोशिश की जहाँ मनुष्य का मैं उसके जीवन का केन्द्र नहीं रह जाता।

मियो समुदाय के लोग अधिकांशतः किसान, खेतिहर और पशुपालक हैं। 1947 में भारत ब्रिटिश शासन से आज़ाद हुआ और उसी समय देश का भारत तथा पाकिस्तान, दो हिस्सों में बँटवारा भी हुआ। मियो समुदाय के कई लोग पाकिस्तान चले गए। मियो लोगों में मुसलमान और हिन्दुओं की सांस्कृतिक परम्पराओं का मिश्रण है।

तो इस तरह हमने देखा कि विभिन्न समुदायों को अलग-अलग परिस्थितियों में बाध्य होकर विस्थापित होना पड़ा। मीणा समुदाय को छोड़कर, जो आंशिक रूप से गैर-आदिवासी अर्थव्यवस्था तथा भूगोल में समाहित हो गए हैं, मोटे तौर पर तो आदिवासी समुदाय उत्पादन का एक ऐसा तरीका अपनाए हुए हैं जिससे कोई बहुत अतिरिक्त उत्पादन नहीं हो पाता। तकरीबन यही बात उन समुदायों के लिए भी कही जा सकती है जिनका नीचे वर्णन किया गया है।

गडिया लोहार

गडिया लोहार समुदाय के लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक खूबसूरत बैलगाड़ियों में सफर करते हैं। बैलगाड़ियों को 'गाड़ी' कहा जाता है। 'गडिया लोहार' का अर्थ है बैलगाड़ियों में चलने वाले लोहार। ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में वे चित्तौड़गढ में रहते थे। वे खेती के औज़ार और घरेलू उपकरण बनाते हैं तथा उनकी मरम्मत करते हैं। ये लोग पारम्परिक रूप से राजपूतों के लिए हथियार बनाते थे। ये लोग राजस्थान में और राजस्थान से बाहर बहुत से स्थानों को जाते रहते हैं।

सहरिया समुदाय

सहरिया समुदाय थोड़ी-बहुत खेती करता है लेकिन इस समुदाय के लोग अधिकांशतः, ज़मींदारों के लिए श्रमिकों के रूप में काम करते हैं। ये लोग लकड़ी के अपने कुशल काम के लिए जाने जाते हैं। ये लोग जंगलों से गोंद, शहद और तेंदू पत्ते इकट्ठा करते हैं। तम्बाकू के चूरे को तेंदू पत्तियों में लपेटकर एक छोर पर धागे से उसे बाँध दिया जाता है। इस तरह से बीड़ियाँ बनती हैं। पत्तियों को 2 से 6 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है, उसके बाद उनमें तम्बाकू को लपेटा जाता है।

सहरिया समुदाय में गरीबी, भुखमरी और कुपोषण बहुत ज़्यादा है। इन लोगों में बँधुआ मज़दूरी और बाल मज़दूरी के बहुत सारे मामले मिलते हैं, खास तौर पर बारन ज़िले में।

बँधुआ मज़दूरी क्या होती है?

अपनी गरीबी की दशा में इन खेतिहर मज़दूरों को ज़मींदारों से कर्ज लेने के लिए मज़बूर होना पड़ता है, और ज़मींदार

उन्हें बहुत ऊँची ब्याज दरों पर कर्ज देते हैं। चूँकि इन मज़दूरों के लिए कर्ज चुकाना अक्सर बहुत मुश्किल हो जाता है इसलिए मज़दूर को ज़मींदार के पास बहुत कम मज़दूरी पर काम करने के लिए मज़बूर होना पड़ता है। ब्याज बढ़ता जाता है, और अक्सर मज़दूरों के बच्चों को भी आगे तक इसी तरह से काम करते रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसे ही बँधुआ मज़दूरी कहते हैं। उनका श्रम ज़मींदार के पास 'बन्धक' होता है, और वे कहीं और काम नहीं कर सकते। हालाँकि कानूनी रूप से तो भारत में 1976 से ही बँधुआ मज़दूरी को समाप्त कर दिया गया है, पर आज भी इस प्रथा का चलन कई जगह जारी है।

खेती में मशीनों के उपयोग के कारण खेतों पर मिलने वाले रोजगार में कमी आ गई है। इसलिए मज़दूरों को अक्सर दूसरी जगहों पर काम तलाश करना पड़ता है। खानों और खदानों में उन्हें काम मिलता है, पर वहाँ भी बँधुआ मज़दूरी का चलन जारी है। खनन स्थलों पर अक्सर खान मालिकों द्वारा शराब बेची जाती है, और उसकी कीमत को मज़दूरों की पगारों में से काट लिया जाता है। और इस प्रकार यह समुदाय और भी वंचित हो जाता है।

सहरिया समुदाय जातीय समाज से इतना अलग प्रतीत नहीं होता। ये लोग मैदानों में रहते हैं।

इन लोगों ने हिन्दू धर्म अपना लिया है।

और ये लोग वही भाषा बोलते हैं जो भाषा स्थानीय लोग बोलते हैं।

वे ज़मींदारों के लिए, या खदानों पर मज़दूरों के रूप में काम करते हैं।

पर ये लोग सर्वाधिक वंचित समुदायों में से एक हैं।

तब क्या होता है, जब जनजातीय समुदाय के लोग अन्य लोगों के नजदीक रहते हैं?

ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थिति में वे और गरीब हो जाते हैं।

जातीय समाज की तुलना में उनका दर्जा और भी कम होता प्रतीत होता है।

पर ऐसा क्यों?

यह समझने के लिए कि ऐसा क्यों हो रहा है हमें जनजातीय तथा जातीय समाजों के बीच होने वाले क्रियाकलापों और सम्पर्कों के भूगोल को समझना पड़ेगा। जातीय समाज में ज़मीन पर अधिकांशतः ऊँची जातियों के पुरुषों का अधिकार होता है। जिस तरह ऊँची जाति के ये लोग तथाकथित नीची जाति के लोगों को मज़दूरी पर रखते हैं, उसी तरह से ये लोग जनजातीय लोगों को भी मज़दूरी पर रखते हैं और इस तरह जनजातीय लोग भी मज़दूरी पर काम करने वाले श्रमिकों की श्रेणी में आ जाते हैं। उनकी आर्थिक हैसियत तथा सामाजिक दर्जा तथाकथित नीची जाति के श्रमिकों के जैसे ही हो जाते हैं।

अरावली पर्वत श्रेणी में खनन

अरावली पर्वत श्रेणी में बहुत सारे खनिज मौजूद हैं। इन्हें खनन करके निकाला जाता है और विभिन्न उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। बहुत शुरुआती काल से अरावली पर्वतों से ताँबे का खनन किया जाता रहा है।

हड़प्पा संस्कृति के कुछ स्थल भी राजस्थान के गंगानगर ज़िले में तथा गुजरात के लोथल में खुदाई में निकले हैं। हड़प्पा संस्कृति के कई स्थानों पर ताँबे के उपकरण और हथियार मिले हैं। पुरातत्ववेत्ता मानते हैं कि हड़प्पा संस्कृति के लोग 5000 साल पहले अरावली पर्वतों में स्थित खेत्री की खदानों से ताँबा निकाला करते थे! (दृश्यात्मक मानचित्र देखें)

आज अरावली पर्वतों में खनन का काम बहुत व्यापक स्तर पर होता है। सोपस्टोन (घियापत्थर), संगमरमर, लाल बलुआ पत्थर और जिप्सम ऐसे कुछ पत्थर हैं जिनका यहाँ खनन किया जाता है। अरावली पर्वतों पर मशीनों की सहायता से गहरे तक खुदाई करके खनन का यह काम किया जाता है। अक्सर चट्टानों को डायनामाइट से उड़ाकर तोड़ा जाता है। निजी और सरकारी, दोनों कम्पनियाँ यह काम करती हैं। जोधपुर (दृश्यात्मक मानचित्र देखें) और नागौर में बलुआ पत्थर का खनन

होता है जो अधिकांशतः स्मारकों व अन्य ढाँचों के निर्माण के काम आता है। जोधपुर में लाल पत्थर का खनन किया जाता है जिसका इस्तेमाल निर्माण कार्यों में होता है। ग्रेनाइट राजस्थान में मिलने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण पत्थर है और जालौर में ग्रेनाइट को संसाधित करने का एक बड़ा केन्द्र है।

कोटा पत्थर तथा राजस्थान का संगमरमर भवन निर्माण के पत्थरों के रूप में देशभर में लोकप्रिय हो गए हैं। कोटा पत्थर चूना पत्थर का बारीक कणों वाला एक प्रकार होता है और अब यह पूरे देश में बहुत लोकप्रिय हो गया है जिसकी एक वजह है इसका अपेक्षाकृत सस्ता और टिकाऊ होना। कोटा ज़िले में सैकड़ों खदानें हैं। ग्रेनाइट और संगमरमर को उनकी चमक के लिए जाना जाता है और इनका अच्छा-खासा बाज़ार भी है। क्या आप दृश्यात्मक मानचित्र में मकराना नामक स्थान को ढूँढ सकते हैं? ताज महल मकराना की खानों से प्राप्त सफेद संगमरमर से बनाया गया था।

सोपस्टोन का इस्तेमाल टैल्क (सेलखड़ी) बनाने के लिए किया जाता है जिससे टैल्कम पाउडर (सेलखड़ी का चूर्ण) बनाया जाता है। चूना पत्थर का इस्तेमाल सीमेंट उद्योग में कच्चे माल की तरह किया जाता है। राजस्थान देश में सीमेंट का सबसे बड़ा उत्पादक है और चित्तौड़गढ़ ज़िला इसका प्रमुख केन्द्र है। राजस्थान में रत्न-जवाहरात और आभूषण भी बनाए जाते हैं।

दृश्यात्मक मानचित्र से यह पता लगाएँ कि संगमरमर का काम और लकड़ी के खिलौने बनाने का काम कहाँ होता है।

अगर बहुत ज़्यादा खनन होता रहा तो पहाड़ियाँ जल्दी समाप्त हो जाएँगी।

अगर वहाँ पर खनन का इतना अधिक काम होता है तो जनजातीय समुदाय वहाँ कैसे रह पाएँगे?

उनके घर, उनकी खेती और जंगल... सब तबाह हो जाएँगे!

इसके अलावा इससे जानवरों, पक्षियों और पौधों के आशियाने भी नष्ट हो जाएँगे।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने 1994 में अपना फैसला सुनाते हुए अरावली पर्वतों में सिर्फ सीमित खनन की अनुमति दी थी। लेकिन फिर भी खनन करने वाले कई लोग खनन करते ही चले जा रहे हैं। इन पहाड़ियों का तेजी से क्षरण हो रहा है। लोक इस अवैध खनन का विरोध भी करते हैं। हमारे देश के कानून ऐसे खनन की इजाजत नहीं देते। कानून जिस बात की अनुमति देता है उसे 'वैध' कहा जाता है। जब कानून का उल्लंघन किया जाता है, तो वह काम 'अवैध' हो जाता है। लोगों ने अवैध खनन के बारे में अखबारों में लिखा। टीवी पर भी दिखाया गया कि किस प्रकार अवैध खनन किया जा रहा था। 2009 में उच्चतम न्यायालय ने कुछ खास क्षेत्रों में खनन पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

स्वास्थ्य पर असर

राष्ट्रीय खनिक स्वास्थ्य संस्था द्वारा 2012 में राजस्थान के करौली ज़िले की पत्थर की खदानों में एक अध्ययन कराया गया था। यह पाया गया कि खदानों में काम करने वाले 23 प्रतिशत श्रमिक सिलिकोसिस से पीड़ित थे। सिलिकोसिस फेफड़ों की बीमारी है जो सिलिका की धूल से साँस लेते समय अन्दर चले जाने से होती है। राजस्थान के खदान कर्मचारियों के बीच यह पेशागत बीमारी और साथ ही तपेदिक (टीबी) की बीमारी व्यापक रूप से पाई जाती है।

विकास बनाम विस्थापन

बाँध के निर्माण जैसी विकास की परियोजनाओं के द्वारा भी लोगों को अपने निवास स्थानों तथा आजीविका कमाने के स्थानों से हटने के लिए मज़बूर किया गया है। बाँध के निर्माण में वनभूमि जलमग्न हो जाती है ताकि बाँध के पानी को संचित करने वाले जलाशय का निर्माण किया जा सके। अक्सर ये वे ज़मीनें होती हैं जहाँ जनजातीय समुदाय रहते आए हैं।

इस प्रक्रिया में इन लोगों को बहुत हद तक विस्थापित कर दिया गया है। उदाहरण के लिए राजस्थान में बने माही बजाज सागर बाँध ने 38,400 लोगों को विस्थापित कर दिया जिनमें से 76 प्रतिशत लोग जनजातीय समुदाय के थे।

बाँध पानी के प्रबन्धन का केन्द्रीकरण कर देते हैं।

बाँध बहुत बड़े पैमाने पर बनता है और उसका नियंत्रण राज्य के हाथ में होता है...।

...और यह सब जनजातियों जैसे स्थानीय समुदायों की आजीविका की कीमत पर होता है।

दूसरी जगहों की भाँति राजस्थान में भी लोग उन पर जबरदस्ती लादे जा रहे इस विस्थापन के खिलाफ संगठित हुए हैं। यहाँ लोगों की सरकार के अधिकारियों के बीच होने वाली बातचीत को दर्शाया जा रहा हैः

आपका समुदाय जिस ज़मीन पर रह रहा है, विकास परियोजना के लिए उस ज़मीन की आवश्यकता है।

इससे देश में समृद्धि आएगी और देश प्रगति करेगा।

देश की भलाई के लिए आपके समुदाय को बलिदान करना होगा।

पर ऐसी स्थिति में हमें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और हमारा भविष्य अनिश्चित हो जाता है।

विकास का 'बोझ' लोगों के कंधों पर जबरदस्ती डाल दिया जाता है।

संरक्षण बनाम विस्थापन

आप जानते हैं कि दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बड़े पैमाने पर जंगलों की सफाई हुई है और आज भी होती जा रही है। जंगलों का सफाया खेती के लिए, सड़कें बनाने के लिए, बाँध बनाने के लिए, शहरों और कस्बों को बसाने के लिए तथा खनन के लिए किया जाता है। पहले पेड़ों को काटा जाता है फिर विभिन्न तरह के सामान बनाने के लिए उनकी लकड़ियों को बड़ी मात्रा में कारखानों तक ले जाया जाता है।

हमें जंगलों को और पेड़ों को बचाने की ज़रूरत क्यों है

पेड़ों के होने से पानी के साथ वहाँ की मिट्टी बहकर नहीं जाती।

पेड़ों से बहुत अच्छी छाँव मिलती है। पेड़ ठण्डक देते हैं।

पेड़ों तथा घास के होने से वहाँ की मिट्टी में पानी रिसकर भीतर चला जाता है।

इसीलिए हमें कुँओं से पानी मिल पाता है।

पेड़ हमें लकड़ी...शहद, और जड़ी बूटियाँ देते हैं।

जंगलों में लोग भी रहते हैं।

पशु पक्षी भी वहाँ रहते हैं।

अगर जंगल साफ कर दिए जाते हैं तो बहुत व्यापक नुकसान होता है। दुनिया में कई स्थानों में कुछ जंगलों का संरक्षण किया जाता है। ऐसे स्थानों को 'राष्ट्रीय उद्यान' और 'वन्यजीव अभ्यारण्य' कहा जाता है। यहाँ पर न तो पेड़ों को काटा जा सकता है और ना ही जानवरों को पकड़ा या मारा जा सकता है।

क्या लोग भी ऐसी जगहों पर रहना जारी रख सकते हैं?

ऐसे अधिकांश मामलों में तो लोगों को वहाँ से हटकर कहीं और जाकर रहने के लिए कहा गया है।

वे लोग कहाँ जाएँगे?

जनजातीय समुदाय जंगलों से केवल थोड़ी बहुत चीज़ें ही लेते हैं।

केवल उतनी ही जो उनके जीने के लिए ज़रूरी होती हैं।

कुछ खास स्थानों को उनकी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए संरक्षित करने हेतु सबसे पहला कदम सम्भवतः मंगोलिया में लिया गया था। 1778 में, मंगोलियाई सरकार ने राजधानी उलान बतौर के दक्षिण में स्थित बोग्दखान ऊल को पवित्र स्थल

के रूप में तथा प्राकृतिक सौन्दर्य वाले स्थान के रूप में संरक्षित करने का निर्णय लिया। लेकिन हज़ारों सालों से अपने जानवरों को वहाँ चरा रहे गड़रिया समुदायों को वहाँ से विस्थापित नहीं किया गया; वे वहीं पर रहते रहे।

1872 में यलोस्टोन (अमरीका में) में, जहाँ कैन्यन (तंग घाटी) और गर्म पानी के सोते (गीज़र) जैसे कई प्राकृतिक अजूबे पाए जाते हैं, सरकार द्वारा पर्यावरण के संरक्षण का एक नया चलन शुरू किया गया जिसे 'राष्ट्रीय उद्यान' परियोजना के रूप में जाना गया। सदियों से यलोस्टोन में रह रहे कई जनजातीय समुदायों - मुख्य रूप से शोशोन, क्रो तथा ब्लैकफुट – से इस परियोजना के बारे में न तो कोई परामर्श किया गया, न उनकी ओर कोई ध्यान दिया गया। उन्हें उस स्थान से हटा दिया गया। और 'राष्ट्रीय उद्यान' का यही प्रतिरूप दुनिया के सभी हिस्सों में फैल गया।

राष्ट्रीय उद्यान प्रकृति के संरक्षण के लिए बनाए जाते हैं।

जनजातीय समुदाय प्रकृति को तबाह नहीं कर रहे हैं!

फिर भी प्रकृति के नाम पर इन लोगों को ऐसे स्थानों से बाहर निकाल दिया जाता है!

दुनियाभर में ऐसे उद्यानों के असंख्य उदाहरण हैं, चाहे ऑस्ट्रेलिया हो, अफ्रीका हो या भारत। अफ्रीका के देश युगांडा में बतवा पिग्मी लोगों को उनके घरों से बाहर कर दिया गया है। 1970 के दशक में अफ्रीका के सेरेंगेटी राष्ट्रीय उद्यान से मसाई लोगों को बाहर खदेड़ दिया गया था। यह बात व्यापक रूप से सामने आती रही है कि इन उद्यानों में रह रहे जानवर घटते जा रहे हैं। अफ्रीका के सेरेंगेटी में गेंडे लगभग विलुप्त होने की कगार पर हैं। भारत में कई स्थानों पर राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभ्यारण्यों ने बाघों के संरक्षण का लक्ष्य घोषित किया है। 1981 में मध्य प्रदेश में स्थापित हुआ सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान ऐसा करने वाला देश का पहला राष्ट्रीय उद्यान था और बाद में देश भर में कई राष्ट्रीय उद्यानों ने इसका अनुसरण किया। ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा बहुत इसका विरोध किया जाता है क्योंकि इन प्रक्रियाओं द्वारा उन्हें उनके घरों से विस्थापित किया जा रहा है। अक्सर उनके पास जाने के लिए कोई और जगह नहीं होती।

राजस्थान में कई राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव अभ्यारण्य हैं। इनमें से कुछ हैं:

- जैसलमेर का मरुस्थल राष्ट्रीय उद्यान

यहाँ पाए जाने वाले जानवर हैं जंगली गधा, भारतीय गज़ेल (मृग), भारतीय तिलोर (इंडियन बस्टर्ड), चिंकारा, काला हिरण, रेगिस्तानी लोमड़ी, बंगाल लोमड़ी और रेगिस्तानी बिल्ली।

- सवाई माधोपुर का रणथम्बोर राष्ट्रीय उद्यान – यह अरावली और विंध्य पर्वत श्रेणियों के मिलने के स्थान पर बनाया गया है। यह मूलतः जयपुर के राजाओं की शिकारगाह थी तथा 1973 में इसे बाघ परियोजना संरक्षण केन्द्र बना दिया गया था।

- अलवर में स्थित सरिस्का बाघ संरक्षण केन्द्र/अभ्यारण्य

- भरतपुर स्थित केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान

यह विरोधाभासी बात है कि अरावली क्षेत्र में स्थित राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों की सीमाओं के भीतर कई खदानें भी मौजूद हैं। जामवा रामगढ़ वन्यजीव अभ्यारण्य और सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान के क्षेत्रों को सिलखड़ी तथा संगमरमर के खनन के लिए इस्तेमाल किया गया है।

सिलसिलेवार विस्थापन

राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों को बनाने के लिए कई समुदायों को विस्थापित कर दिया गया है। अक्सर, एक ही जगह पर अलग-अलग समय पर होने वाली अलग-अलग परियोजनाओं के लिए उन्हीं समुदायों को बार-बार विस्थापित किया गया है। उदाहरण के लिए, जब राणा प्रताप सागर बाँध बनाया गया था तो रावतभाटा के ग्रामीणों को विस्थापित किया गया था। आज उन्हें फिर से विस्थापित किया जा रहा है क्योंकि मुकुन्द्र राष्ट्रीय उद्यान का विस्तार हो रहा है जिसके लिए 32 गाँवों को दूसरी जगह बसाया जाएगा।

प्रतापगढ़ ज़िले के सीता माता अभ्यारण्य में रह रहे 10,000 लोगों के सामने भी दूसरी बार विस्थापित किए जाने का खतरा मंडरा रहा है।

पहले उन्हें माही-कढ़ाना बाँध द्वारा विस्थापित गया था।

मनुष्य जाति की विकास की यात्रा में जनजातीय समाज का उनके स्थानों से विस्थापन और हाशिए पर ढकेला जाना जारी है!

5

राजस्थान के शुष्क और आर्द्र क्षेत्र

अरावली पर्वत राजस्थान के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों तथा पूर्वी आर्द्र क्षेत्रों को मोटे तौर पर सीमांकित करते हैं। पानी की उपलब्धता पूर्वी क्षेत्र में खेती को एक प्रमुख गतिविधि बना देती है। लेकिन पश्चिमी राजस्थान का विशेष लक्षण हैं सूखा, और भूमिगत पेयजल की परत के नीचे खारे पानी की मौजूदगी। पश्चिमी राजस्थान का सामाजिक भूगोल उन तरीकों से विकसित हुआ है जिनके द्वारा समाज ने सूखे से संघर्ष किया। ये तरीके पारम्परिक निपुणता और मरुस्थल में पानी को ढूँढ निकालने तथा बचाकर रखने के कौशल पर आधारित थे। बाद में, इनके साथ ही, नहरों जैसी आधुनिक संरचनाओं का उपयोग भी किया गया।

अन्य संसाधनों की तरह ही, राजस्थान में पानी की सुलभता भी सामाजिक ढाँचों द्वारा ही नियंत्रित होती रही है और आज भी होती है। इसी प्रकार, अकाल जो एक प्राकृतिक घटना है, की परिणति भुखमरी में हो सकती है जो अक्सर सामाजिक रूप से निर्मित होती है।

दृश्यात्मक मानचित्र को देखिएः

राजस्थान की नदियाँ और झीलें कहाँ पर हैं?

मानचित्र में निम्नलिखित नदियों को तलाशेंः

चम्बल, बनास, लूनी। ये नदियाँ किन दिशाओं में बहती हैं?

उदयपुर में बहुत सारी झीलें हैं। झीलों वाले अन्य स्थानों को मानचित्र में तलाशें।

अकाल और भुखमरी

पूर्वी राजस्थान में पानी ज़्यादा है और खेती भी ज़्यादा है।

मरुस्थल में लोग कुछ फसलों की खेती करते हैं।

ये लोग गर्मियों में मरुस्थल से बाहर चले जाते हैं और फिर वर्षा ऋतु के दौरान यहाँ वापस आ जाते हैं।

पूर्व की अपेक्षा पश्चिमी राजस्थान में ज़्यादा अकाल पड़ते होंगे।

अकाल अक्सर पड़ते हैं, हर 4-5 सालों में। शायद इसीलिए राजस्थान में अकाल की तीव्रता को समझाने के लिए हम अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। पर्यावरणविद अनुपम मिश्र बताते हैंः

जब अकाल से भोजन की कमी हो जाती है तो इसे अन्नाकाल कहते हैं।

जब अकाल से पानी का अभाव हो जाता है तो इसे जलाकाल कहते हैं।

जब चारे का अभाव हो जाता है तो इस अकाल को त्रिणाकाल कहते हैं। (त्रिण माने चारा)

जब अकाल इतना भयावह हो कि ऊपर उल्लिखित तीनों चीज़ों की कमी हो जाए तो इसे त्रिकाल कहते हैं।

जब अकाल की स्थिति बहुत गम्भीर हो जाती है और परिस्थितयाँ ऐसी हो जाती हैं कि बहुत से लोगों को खाना मिलना मुश्किल हो जाए तो इसे भुखमरी कहते हैं।

गरीब लोगों पर तो इसका बहुत बुरा असर पड़ता होगा।

भुखमरी अक्सर मनुष्यों द्वारा निर्मित स्थिति होती है।

इस महत्वपूर्ण हकीकत पर गौर किया जाना चाहिए, कि ऐसे वक्त में समाज के कई तबकों के लोग जीने के लिए आवश्यक बुनियादी खाद्य ज़रूरतें भी पूरी नहीं कर पाते। इसलिए भुखमरी ऐसे इलाकों में भी हो सकती है जहाँ कुल मिलाकर खाद्योत्पादन अच्छा हो। समाज के गरीब तबकों की आमदनी घटने से, या खाद्य पदार्थों की कीमत बढ़ने से ऐसी स्थितियाँ पैदा हो सकती हैं कि गरीब लोगों को भोजन जुटा पाना भी मुश्किल हो जाता है।

अक्सर यह देखा जाता है कि ऐसे समय पर व्यापारी लोग अनाज व अन्य खाद्य पदार्थों को जमा करके रख लेते हैं।

इससे अनाजों और खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाएँगी और व्यापारी खूब लाभ कमाएँगे।

राजस्थान में रजवाड़ों के शासन के दौर में बाज़ार में कीमतों पर निगरानी रखने के लिए, तथा सूखा प्रभावित क्षेत्रों से अनाज के निर्यात को रोकने के लिए विशेष अफसर हुआ करते थे। ब्रिटिश शासन में अक्सर ऐसी व्यवस्थाओं को बदल दिया जाता था। यद्यपि रजवाड़ों के शासन के दौरान भी भुखमरी की स्थितियाँ पैदा हुई थीं, लेकिन ब्रिटिश काल में ये स्थितियाँ नाटकीय रूप से बढ़ गई थीं। इतिहासकार डेविड हार्डीमैन बताते हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश नीति से व्यापारियों और साहूकारों को अनाज की जमाखोरी द्वारा खाद्यान्न की कृत्रिम कमी पैदा करने में मदद मिलती थी। ऊँची कीमतें बनाई रखी जाती थीं जिससे जनता को बड़े पैमाने पर पीड़ा तथा भुखमरी झेलना पड़ती थी।

पानी का संग्रह

पारम्परिक रूप से राजस्थान के लोग पानी को बड़ी कल्पनाशीलता तथा कौशल के साथ बचाते हैं और उसका संग्रह करते आए हैं। लोगों ने व्यक्तिगत तौर पर छोटे-छोटे कुएँ बनाए हैं, तथा बड़े कुएँ भी बनाए गए हैं जिन्हें बनाने के लिए बहुत अधिक श्रम और पैसे की ज़रूरत होती है। ये बड़े कुएँ अधिकांशतः रजवाड़ों द्वारा बनाए गए थे।

कुई

कुई एक छोटा सा कुआँ होता है। इसका एक छोटा सा मुँह होता है। जैसे-जैसे यह गहरा होता जाता है, यह बड़ा हो जाता है। मुँह छोटा होने से इसे बन्द रख पाना आसान हो जाता है।

अगर मुँह बड़ा होगा, या उसे खुला छोड़ दिया जाएगा तो पानी वाष्प बनकर उड़ जाएगा...।

...हाँ, मरुस्थल की गर्मी के कारण।

चूँकि इसका मुँह छोटा होता है, और उसे बन्द करके रखा जाता है, इसलिए पानी उड़ने से बचा रहता है।

कई स्थानों पर जब मिट्टी को 15 से 25 हाथों की लम्बाई बराबर खोदा जाता है, तो वहाँ एक चौड़ा पत्थर निकल आता है। इसे खड़िया कहा जाता है। इसके मिल जाने पर लोग खोदना बन्द कर देते हैं क्योंकि यह पत्थर प्राकृतिक रूप से ताजे पानी को इससे नीचे मिलने वाले खारे पानी से अलग करता है। खारे पानी को पाताल पानी कहा जाता है (पाताल का अर्थ होता है ज़मीन में बहुत गहरे)।

चित्रः कुई की संरचना

क्या कुई के अन्दर की रेत पानी में नहीं गिर जाती होगी?

हो सकता है लोग कुई के भीतर दीवारें बनाते हों।

हाँ, ईंट की दीवारें बनाई जाती हैं। यदि ईंट उपलब्ध न हों तो ये लोग खीप के पौधे की घास से बनी रस्सियों का उपयोग करते हैं। यदि ये रस्सियाँ भी आसानी से उपलब्ध न हो पाएँ तो ये लोग कुई की दीवारे बनाने के लिए लकड़ी का उपयोग करते हैं।

जब कोई कुई बनाता है और उसे खड़िया मिल जाती है, तो लोग समझ जाते हैं कि अब वहाँ कई नई कुइयाँ खोदी

जा सकती हैं। उस जगह के आसपास करीब 30 से 40 कुइयाँ खोदी जा सकती हैं और प्रत्येक कुई में रोज़ करीब 4 से 5 घड़े पानी रिस कर पहुँच जाएगा। कुइयों को बनाने और उनका रखरखाव करने वाले लोग चेजारो कहलाते हैं। उनके कौशल का सभी लोग सम्मान करते थे। उन्हें कुइयाँ बनाने के लिए उपहार दिए जाते थे। उन्हें हर साल कुई के मालिकों द्वारा अनाज भी दिया जाता था।

आम तौर पर गाँव के हर परिवार के पास एक या दो कुइयाँ होती हैं। लेकिन ग्राम सभा इस बात को तय करती है कि कितनी कुइयाँ बनाई जा सकती हैं। कभी-कभी ग्राम पंचायत ग्रामीणों को नई कुइयाँ बनाने की इजाजत नहीं देती।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसा क्यों है?

कुंड

कुंड कुई से बड़ा होता है। इसे गाँव के सम्पन्न लोगों द्वारा बनाया जाता है। इसे एक परिवार के इस्तेमाल के लिए बनाया जाता है, यद्यपि कभी-कभी पूरे गाँव के लिए भी बनाया जाता है। कुंड तश्तरी के आकार का होता है। यह आकार पानी को कुएँ में रिसने में मदद करता है। इसके ऊपर का आवरण गुम्बद के आकार का होता है। यह गुम्बद पत्थर की सिल्लियों का बना होता है। यदि पत्थर उपलब्ध न हों, तो आवरण बनाने के लिए पेड़ के तने को गीली मिट्टी और चूने के साथ इस्तेमाल किया जाता है। इन गुम्बदों में जाली वाली छोटी-छोटी खिड़कियाँ होती हैं। इससे बाहर की हवा और धूप अन्दर के पानी तक पहुँच पाती हैं। इस प्रकार पानी ताजा बना रहता है। कुंड के अन्दर भी, तार की जालियों को इस्तेमाल किया जाता है। इससे रेत को पानी में गिरने से रोकने में मदद मिलती है। इसके अलावा, कुंड की दीवारों पर चूने और राख का पलस्तर कर दिया जाता है।

कई परिवार जिनके पास अपने कुंड थे, अब गाँवों में नहीं रहते। वे कस्बों और नगरों में रहने चले गए हैं। पर अक्सर उनके कुंडों का रखरखाव अन्य लोगों द्वारा किया जाता है।

बावड़ी

बावड़ी एक कुआँ या तालाब होता है जिसमें सीढ़ियाँ होती हैं। सीढ़ियों से उतरकर लोग पानी तक पहुँच सकते हैं। बावड़ी अक्सर ढकी हुई या संरक्षित होती है। बावड़ी के साथ लाभ यह है कि लोगों के लिए भू-जल तक पहुँचना आसान होता है और साथ उसका रखरखाव तथा प्रबन्धन भी आसान होता है।

तालाब

तालाब या ताल में कुंड से कहीं ज़्यादा पानी होता है। तालाब का एक अच्छा उदाहरण जैसलमेर में मिलता है। यह तालाब घड़सीसर कहलाता है। इसका नाम राजा महारावल घड़सी के नाम पर रखा गया था क्योंकि यह तालाब 1335 में, उनके शासनकाल में बना था।

घड़सीसर 3 मील लम्बा और 1 मील चौड़ा ताल है और इसके प्रवेश स्थान पर एक सुन्दर द्वार बना हुआ है। यहाँ पर एक उद्यान और एक मन्दिर भी है। ताल तक जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। रजवाड़ों के शासन के दौरान इस ताल की रक्षा करने के लिए एक सेना की नियुक्ति की गई थी। यहाँ यात्रियों के रुकने के लिए कमरे भी बने हुए थे।

पानी तथा सामाजिक ढाँचा

जहाँ एक ओर पानी को बचाने तथा उसका संग्रह करने में राजस्थान के लोगों ने असाधारण बुद्धिमत्ता और कौशल का परिचय दिया था, वहीं दूसरी ओर जाति व्यवस्था के पूर्वाग्रहों द्वारा निर्धारित होने के कारण पानी तक लोगों की पहुँच और उसके वितरण में असमानता थी। सुविधा सम्पन्न जातियाँ हमेशा दूसरे लोगों को एक दूरी पर रखने की कोशिश करती थीं। इस दूरी व इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उन्होंने यह कह दिया कि तथाकथित नीची जाति के लोग अशुद्ध थे और अगर वे कुँओं से पानी लेते तो पानी दूषित हो जाता! सुविधा सम्पन्न लोगों तथा दूसरी जाति के लोगों के पानी के स्रोत अलग-अलग थे। सभी लोग एक ही कुएँ से पानी नहीं ले सकते थे। उन मामलों में, जब किसी इलाके के सभी जातियों के लोग एक ही कुएँ के पानी का इस्तेमाल करते थे, वहाँ तथाकथित नीची जाति के लोगों को कई घण्टों तक

इन्तजार करना पड़ता था कि कोई सुविधा सम्पन्न जाति का व्यक्ति वहाँ आकर उन्हें पानी निकाल के दे।

आज स्थिति कैसी है? विश्व बैंक के लोगों द्वारा इस स्थिति की चर्चा इस प्रकार की जाती हैः

सार्वजनिक जल व्यवस्था प्रभावी नहीं है।

सरकार लोगों को मुफ्त में पानी की आपूर्ति करती है।

पानी एक संसाधन है, इसे लोगों को एक उपभोग वस्तु के रूप में बेचा जाना चाहिए।

बिलकुल ठीक, निजी कम्पनियों को पानी बेचकर मुनाफा कमाना चाहिए।

इसलिए सरकार को खुद पानी की आपूर्ति नहीं करना चाहिए, बल्कि निजी कम्पनियों तथा लोगों के बीच पानी के आदान-प्रदान को सुगम बनाने में मदद करना चाहिए।

लोगों को भी इस नई योजना में शामिल किया जा सकता है।

कैसे?

शुरुआत में वे लोग इस सुविधा पर लगने वाली लागत का आंशिक भुगतान कर सकते हैं और बाद में इस्तेमाल किए गए पानी के बिल का भुगतान करें।

भारत में सन् 2002 में स्वजलधारा नाम से एक जल योजना शुरू की गई थी। विश्व बैंक के निर्देशों के अनुसार इसकी लागत को अधिकांशतः केन्द्र सरकार ने उठाया था। लगभग 10 प्रतिशत लागत को लोगों ने उठाया। प्रारम्भिक और आवर्ती लागतों के लिए लोगों से पैसा इकट्ठा किया गया था।

जो लोग पैसा नहीं दे सके उन्हें इन कनेक्शनों से पानी लेने की अनुमति नहीं है।

प्रीति सम्पत ने सन् 2007 में राजस्थान में स्वजलधारा के प्रभाव का अध्ययन किया। उनकी रिपोर्ट यह बताती है कि वे लोग जो शुरुआती लागत के रूप में 1000 रुपए नहीं दे पाए थे उन्हें इस योजना से पानी नहीं मिला। उनके द्वारा उल्लेख की गई राजसमन्द ज़िले में हुई कुछ चर्चाओं को यहाँ बताया गया हैः

बगलपुरा एक राजपूत प्रधान गाँव है। एक दलित व्यक्ति कहता हैः ऊँची जाति के लोगों ने मुझ पर 1200 रुपए देने के लिए दबाव बनाने के लिए मेरे घर के पास लगे हैंडपंप को तोड़ दिया।

तो जातीय कारकों की पकड़ अभी भी बहुत मज़बूत है।

जोगेला मियाला गाँव मेंः

मैं नल से आने वाले पानी का इस्तेमाल नहीं कर सकती क्योंकि सरपंच, जो जल प्रदाय समिति के अध्यक्ष भी हैं, हमें पसन्द नहीं करते।

मैं 7000 रुपए की प्रारम्भिक राशि का भुगतान नहीं कर पाया था।

मुझे इस राशि का भुगतान करने के लिए कर्ज लेना पड़ा था।

कच्चबली गाँव मेंः

पानी की टंकी समिति के सदस्य के घर के पास ही है। उनके परिवार और रिश्तेदारों को पानी की सर्वाधिक आपूर्ति होती है। गाँव के और भीतर के लोगों को शिकायत रहती है कि उन्हें बहुत थोड़ा पानी मिलता है।

गरीबों को, तथा तथाकथित 'नीची' जाति के लोगों को इससे कोई खास लाभ नहीं होगा।

सरकार द्वारा की जाने वाली पानी की आपूर्ति व्यवस्था में इस तरह के जातीय समीकरणों की कोई भूमिका नहीं होती थी।

'समुदाय' आधारित योजना में ताकतवर लोग अपना नियंत्रण स्थापित करना शुरू कर देते हैं।

और निजी कम्पनियाँ लाभ कमाती हैं।

हमारे जैसी गरीब और दलित महिलाओं को पानी लाने के लिए रोज़ दूर-दूर तक पैदल चलना पड़ता क्योंकि हम इस योजना से पानी प्राप्त नहीं कर सकते।

राजस्थान नहर

क्या आप दृश्यात्मक मानचित्र में इंदिरा गाँधी नहर को देख सकते हैं? यह राजस्थान नहर भी कहलाती है।

यह पंजाब से शुरू होती है...।

और जैसलमेर तक जाती है!

यह नहर 650 किमी लम्बी है। यह भारत की सबसे बड़ी नहर परियोजनाओं में से एक है। यह सुल्तानपुर में हरिके बैराज से शुरू होती है जो सतलज तथा व्यास नदियों के संगम से कुछ किमी नीचे की ओर स्थित है।

क्या आप मानचित्र में श्रीगंगानगर को देख सकते हैं? यह प्रचुर खेती वाला क्षेत्र है जो राजस्थान नहर के बनने के बाद बनाया व बसाया गया था।

1899-1900 के दौरान इस क्षेत्र में भयावह अकाल पड़ा था। बीकानेर के महाराज गंगा सिंह ने अकाल की मुसीबत से निपटने का निश्चय किया और सतलज, जो ऊँचे हिमालय पर्वतों की पिघलती बर्फ का पानी लिए होती है, के पानी से इस जगह की सिंचाई करने की योजना बनाई। पर बहावलपुर रियासत द्वारा इसका विरोध किया गया। आखिरकार, 1925 में, इस पर काम शुरू हुआ और भारत के ब्रिटिश वायसरॉय के सहयोग से 1927 तक 89 मील की पक्की नहर बना दी गई। सतलज नदी बीकानेर रियासत में जिस स्थान पर प्रवेश करती है, वहीं पर राजा द्वारा गंगानगर की स्थापना की गई।

स्वतंत्रता के बाद 1958 में राजस्थान नहर का निर्माण फिर से शुरू हुआ। इसे 1985 में इंदिरा सागर नहर का नाम दिया गया। इस बाँध से पंजाब और हरियाणा को भी पानी मिलता है। यह बाँध इस बात के लिए जाना जाता है कि इससे राजस्थान के मरुस्थली ज़िलों – बाड़मेर, बीकानेर, चुरू, हनुमानगढ़, जैसलमेर, जोधपुर और गंगानगर – को पानी मिलता है।

इस नहर के बनने के बाद राजस्थान में कई बदलाव हुए। खेती का बहुत विकास हुआ। भवनों, स्कूलों और अस्पतालों का निर्माण हुआ और कई लोगों को रोजगार मिला। कई चरवाहा समुदाय इन इलाकों में बस गए और उन्होंने यहाँ खेती करना शुरू कर दिया। इसके अलावा कई और बदलाव भी हुए। नहर का पानी बड़ी आसानी से मरुस्थल की रेत को बहा ले जाता था। नहर रेत से भर जाती थी और रेत को निकालने के काम में लोगों को लगाना पड़ता था।

कई रेत के टीले नहर क्षेत्र के आसपास पाए जाते हैं।

क्या लोग रेत के टीलों में खेती करेंगे?

नहर के पानी के द्वारा खेती को सम्भव बनाए जाने के साथ ही कुछ रेत के टीलों में भी खेती की जाने लगी।

पहले ऐसा करना सम्भव नहीं था।

हाँ। पर कुछ अनपेक्षित बात घटी। खेती के कारण रेत ढीली हो गई थी। शक्तिशाली मरुस्थली हवाएँ इस ढीली पड़ गई रेत को उड़ाकर ले गईं और उसे नए क्षेत्रों में जमा कर दिया।

इससे तो नए इलाके भी रेतीले हो जाएँगे!

जिसका मतलब हुआ मरुस्थल का विस्तार!

इसके अलावा कुछ और भी हुआ। नहर का पानी रिसकर धरती में जाता है। सतह के नीचे, पानी रेत के कणों के बीच

भरने लगा। आप जानते होंगे कि राजस्थान में ज़मीन की सतह के नीचे बहुत सारा खारा पानी होता है। नहर के पानी का इस खारे पानी के साथ मिलना शुरू हो गया।

तो सब कुछ खारा हो जाएगा।

ज़मीन खारी हो जाने पर उस पर खेती नहीं की जा सकती।

फिर किसानों ने क्या किया?

कुछ किसान काम की तलाश में कस्बों और शहरों को चले गए। पर श्रीगंगानगर जैसे स्थानों से कोई बहुत अधिक प्रवास नहीं होता है और अभी भी वहाँ खेती होती है।

पशुपालकों को भी नई समस्याओं का सामना करना पड़ा। सूखाग्रस्त वर्षों के दौरान ये लोग अपने मवेशियों को चराने के लिए अपने गाँवों से बाहर जाते रहे हैं। लेकिन नहर द्वारा सिंचित इलाकों के किसान अक्सर उन्हें अपने खेतों में घुसने नहीं देते।

उगाई जाने वाली फसलें

आप यह जानते होंगे कि राजस्थान में कई जगह खेती सिर्फ अपना गुजारा चलाने के लिए की जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि खेती से कोई बहुत अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता कि जिसे बाज़ार में बेचा जा सके। पर जहाँ पानी उपलब्ध होता है, वहाँ खेती ज़्यादा होती है।

दृश्यात्मक मानचित्र से निम्नलिखित बातों का पता लगाएँः

- राजस्थान की प्रमुख खाद्य फसलें कौन-सी हैं?
- अरावली पर्वत पश्चिमी और पूर्वी राजस्थान के बीच एक तरह की सीमा निर्मित करते हैं। पूर्वी राजस्थान में उगाई जाने वाली फसलें कौन-सी हैं?
- पश्चिमी राजस्थान में उगाई जाने वाली फसलें कौन-सी हैं?
- श्री गंगानगर का वर्णन करें। यहाँ उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें कौन-सी हैं?

राज्य की अर्थव्यवस्था में खेती का योगदान 22.5 प्रतिशत है। राजस्थान में 2 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर खेती होती है जिसमें से 20 प्रतिशत सिंचित भूमि है। ग्वार जैसी फसलें भी होती हैं जो मानचित्र में दिखाई नहीं गई हैं। हाल के वर्षों में किसानों ने किन्नू लगाना भी शुरू कर दिया है, जो संतरे का एक संकर फल है।

बाँध और जलाशय

राजस्थान में बहुत से बाँध हैं। इनमें पहले बने बाँध जैसे अमर सागर, जो 1688 में महारावल अमर सिंह द्वारा वर्षाजल संरक्षण के लिए बनाया गया था, जसवन्त सागर बाँध जो 1892 में महाराजा जसवन्त सिंह द्वारा सिंचाई उद्देश्यों के लिए बनाया गया था तथा जवाई बाँध जो 1946 में महाराजा उमेद सिंह द्वारा बनवाया गया था। जवाई लूनी नदी की एक सहायक नदी है और यह बाँध जोधपुर शहर को होने वाली जल आपूर्ति का मुख्य स्रोत है।

1947 में देश की आज़ादी के बाद बने बाँधों में से एक प्रमुख बाँध है चंबल नदी पर बना राणा प्रताप सागर बाँध। इसे आप अपने दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। चंबल नदी मध्य प्रदेश की विंध्य पर्वत श्रेणियों से निकलती है, उत्तर की दिशा में राजस्थान की ओर बहती है, और फिर उत्तर प्रदेश में जाकर यमुना नदी में मिल जाती है। चंबल नदी पर बहुत सारे बाँध बनाए गए हैं। राजस्थान की सीमा से नदी की ऊपरी दिशा में, मध्य प्रदेश में स्थित है गाँधी सागर बाँध (दृश्यात्मक मानचित्र देखें)। नदी पर राणा प्रताप बाँध से नीचे की दिशा में स्थित है कोटा बैराज जिसे सिंचाई उद्देश्यों के लिए बनाया गया था। राणा प्रताप जैसे बाँध जल विद्युत ऊर्जा भी पैदा करते हैं।

राजस्थान के कुछ अन्य प्रमुख बाँध हैं जवाहर सागर, बिलासपुर, मेजा, माही बजाज सागर, गम्भीरी, पार्वती, ऊपरी कोडरा और निचला कोडरा, सुहाली, उम्मेद सागर, हेमावास और जलचम।

भारत की आजादी के बाद देशभर में कई बाँध बनाए गए...।

...ताकि देश के कृषि उत्पाद को बढ़ाया जा सके, और जल विद्युत ऊर्जा पैदा की जा सके।

लेकिन बाँधों के बनने से बड़े पैमाने पर लोगों के विस्थापन भी शुरू हो गए..।

कृषि उद्योग

फसलों की खेती से मिलने वाले कच्चे माल पर कई उद्योग चलते हैं। गेहूँ के आटे, शक्कर तथा तिलहन के कारखाने इसके आम उदाहरण हैं। इसके अलावा, ऐसे अन्य उद्योगों में रूई को ओटने व दबाने का उद्योग तथा ग्वार गम का उत्पादन भी शामिल है। इनमें से कुछ का जिक्र नीचे किया जा रहा हैः

तिलहन

राजस्थान भारत में खाने के तेल का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। सफेद सरसों (रेपसीड), सरसों और मूँगफली राजस्थान की प्रमुख तिलहन फसलें हैं। इन्हें खाने में उपयोग किया जाता है। सफेद सरसों का तेल उद्योगों में भी इस्तेमाल किया जाता है। इसके फूलों में पराग की अच्छी तादाद होती है, और मधुमक्खियाँ इससे एक हल्के रंग की और तीखी शहद पैदा करती हैं। सफेद सरसों के उत्पादक अक्सर अपने फसल के परागण के लिए मधुमक्खी पालकों के साथ अनुबन्ध कर लेते हैं।

यहाँ उगाई जाने वाली अन्य तिलहन फसलें हैं सोयाबीन, टरमिर और तिल। टरमिर सूखा सह सकने वाला पौधा है और इसके बीजों से निकलने वाले तेल का इस्तेमाल अधिकांशतः अचार बनाने में किया जाता है। तिल के बीज को सबसे पुरानी ज्ञात तिलहन फसल माना जाता है, और 5000 साल से भी काफी पहले लोगों ने इसकी खेती करना शुरू कर दिया था। इसमें सूखे को सहन करने की क्षमता अच्छी-खासी है, और यह उन जगहों पर भी फल जाती है जहाँ बाकी फसलें नहीं पनप पातीं। गंगानगर तिलहन का उत्पादन करने वाला एक प्रमुख ज़िला है। तिलहन उत्पादन करने वाले दूसरे ज़िले हैं अलवर, भरतपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, जयपुर, धौलपुर, टोंक, बारन, सवाई माधोपुर, जालौर, नागौर, कोटा और पाली। तेल के अधिकांश कारखाने भी इन्हीं ज़िलों में हैं।

चित्रः सरसों के बीज, सोयाबीन के बीज, तिल के बीज

पृष्ठ... पर बने ज़िला मानचित्र को देखें। ये ज़िले कहाँ स्थित हैं? क्या इसमें राजस्थान के पश्चिमी भाग के ज़िले भी शामिल हैं?

राजस्थान में तिलहन की खेती में काफी बढ़ोतरी हुई है और अक्सर इनकी खेती दलहन की फसलों की जगह की गई है।

ग्वार गम (गोंद)

राजस्थान के थार ज़िले के सूखे इलाके भारत में ग्वार की खेती करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र हैं। इसमें सूखा सहन करने की बहुत क्षमता होती है, और विभिन्न तरह की मिट्टियों में पैदा हो सकती है। ग्वार गम प्राप्त करने के लिए ग्वार के बीजों से भूसी को अलग किया जाता है, उन्हें पीसा जाता है और फिर छाना जाता है। चिकित्सा क्षेत्र में, उद्योगों में और खाद्य पदार्थों में इस गोंद का अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। सबसे अधिक उपयोग खाद्य उद्योग में होता है। इसका उपयोग बेकेरी के खाद्य पदार्थों, दुग्ध उत्पादों, मांसाहारी भोजन में, सॉस, सूप तथा सलाद की चटनियों में होता है। ग्वार गम की निर्माण प्रक्रिया में उसकी भूसी और दाना प्राप्त होता है जिसे ग्वार का चूरा कहते हैं जिसे पशुओं के आहार की तरह से बेचा जाता है। ग्वार गम के बहुत से चिकित्सकीय उपयोग भी होते हैं, उदाहरण के लिए, इसे कब्ज से निजात पाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। ग्वार गम के बहुत सारे औद्योगिक उपयोग भी हैं। इसे तेल के कुओं में एक नियंत्रक

एजेंट (अभिकर्ता) के रूप में इस्तेमाल किया जाता है ताकि ड्रिलिंग आसानी से हो सके और ड्रिलिंग में इस्तेमाल होने वाले फ्लूड (तरल पदार्थ) का नुकसान न हो। इसे और भी कई उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है जैसे कपड़ा उद्योग, कागज़ उद्योग, दवाई उद्योग, प्रसाधन उद्योग में तथा विस्फोटक बनाने में।

भारत ग्वार गम का सबसे बड़ा उत्पादक है, और इसका अधिकांश हिस्सा राजस्थान से ही प्राप्त होती है। जोधपुर ग्वार उगाने का सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र है।

कपास

कपास की ओटाई वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कपास के रेशों को उसके बीजों से अलग किया जाता है। फिर इस साफ की जा चुकी और बीज निकाल ली गई कपास को दबाकर उसकी गाँठें बनाई जाती हैं। राजस्थान में कपास की उपलब्धता यहाँ कपड़ा उद्योग को एक महत्वपूर्ण उद्योग बना देती है। राजस्थान के रियासतों के राजाओं ने दस्तकारों को बहुत महीन कपड़े बनाने के लिए प्रोत्साहित किया था। राजस्थान में कपड़ा बनाने की एक समृद्ध परम्परा चली आ रही है जो 'बंधाई और रंगाई' (टाई एंड डाई) तथा हाथ से की गई ठप्पे से छपाई (हैंड ब्लॉक प्रिंटिंग) जैसी कलाओं के फलस्वरूप असाधारण रूप से आकर्षक हो जाती है। 'बाँधने और रंगने' वाले तरीके में कपड़े के कुछ हिस्से को बाँध दिया जाता है और बाकी कपड़े को रंगों में डुबा दिया जाता है; रंगे हुए हिस्से पर कोई रंग नहीं चढ़ता, इसलिए एक कलात्मक नमूना बन जाता है। बाँधने और रंगने की इस विधि को बन्धानी या बन्धेज कहा जाता है। जयपुर के पास स्थित सांगानेर ठप्पे की छपाई के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पारम्परिक रूप से कारीगरों द्वारा जैविक तथा खनिज रंगों का इस्तेमाल किया जाता था। पर आजकल रासायनिक और संश्लेषित (कृत्रिम) रंगों ने उनकी जगह ले ली है। इन छापों की विभिन्न प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित हैं जैसे शिकारी परम्परा जिसमें मनुष्यों और जानवरों के छापों का इस्तेमाल किया जाता है, तथा गाढ़ी ज्यामितीय आकृतियों वाली छपाई जिसे अजरक कहते हैं।

चित्रः राजस्थान के बँधाई व रँगाई के स्वरूप

बीकानेर, बाड़मेर और आसपास के इलाके कढ़ाई और पैबन्दकारी के लिए जाने जाते हैं। कपड़े के साथ-साथ पारम्परिक जूतियों पर भी कढ़ाई की जाती है। राजस्थान के रंगरेज समुदाय को ज़री और ज़रदोसी के काम में ऊँचे दर्जे का कौशल हासिल है। ये कपड़ों पर सोने तथा चाँदी के तारों से की जाने वाली कढ़ाई है। राजस्थान में बने अधिकांश कपड़े विभिन्न मेलों में बिक जाते हैं। सैलानी भी इन रंग-बिरंगे और आकर्षक कपड़ों को खरीदते हैं। भारत में, सूट के तथा अन्य प्रकार के कपड़ों का, एवं धागों का सर्वाधिक निर्माण भीलवाड़ा में होता है। जयपुर ज़िले में स्थित सांगानेर में कपड़े की छपाई के 400 उद्योग हैं। जयपुर में निर्यात करने के लिए परिधान बनाए जाते हैं और यह शहर अपनी हल्के वज़न वाली रजाइयों के लिए भी जाना जाता है।

लाख

राजस्थान में ऐसे भी उद्योग हैं जो लाख पर आधारित हैं, जो खेती का उत्पाद नहीं है, पर इसे पेड़ के तनों से प्राप्त किया जाता है। कैरिआ लाक्का नामक कीड़ा पेड़ की शाखाओं पर राल (रेज़िन) जैसा एक पदार्थ अपने शरीर से निकालते हैं। कुसुम ऐसा ही एक पेड़ है। इस पदार्थ की परत चढ़ी हुई शाखाओं को काटकर उनसे यह पदार्थ अलग किया जाता है, और उसे कूट-पीसकर छाना जाता है। इसे ही लाख कहते हैं और इसका इस्तेमाल वार्निश (रोगन) बनाने में तथा कड़े, चूड़ियाँ व अन्य आभूषण बनाने में किया जाता है।

राजस्थान के कपड़े व अन्य उत्पाद बड़े रंग-बिरंगे होते हैं...।

....और यहाँ के मकान भी।

ऐसा कहा जाता है कि उजाड़ व सूना भूदृश्य ही उसमें रहने वाले लोगों को अपने आसपास की दुनिया को रंग-बिरंगा बनाने के लिए प्रेरित करता है।

6

राजस्थान के राजमहल, राज दरबार और लोग

राजस्थान के रजवाड़ों और रियासतों का सामाजिक भूगोल सत्ता के ढाँचों के ऊँच-नीच के क्रम द्वारा निर्धारित होता था। 1947 के पहले इन रियासतों पर राजाओं का शासन था जो सर्वोच्च सत्ता होते थे और जिनके कई प्रतिनिधि होते थे जिनकी लोगों पर हुकूमत चलती थी। राजस्थान के किले और राजमहल सत्ता के स्थानिक प्रतीक थे और वे उस वक्त के सामाजिक रिश्तों को प्रतिबिम्बित करते थे। इसके अलावा ये ऐसे स्थान भी थे जहाँ कला को उसके विभिन्न रूपों में बहुत संरक्षण दिया जाता था। हालाँकि रजवाड़ों का संरक्षण तो अब नहीं है, लेकिन फिर भी कला की कई परम्पराएँ आज भी राजस्थान के भूगोल को आकार दे रही हैं।

राजपूत लोग कौन थे?

वे वीर योद्धा थे।

वे आक्रमणकारियों से लड़ते थे।

वे ऐसे समूह के रूप में किस तरह उभरे?

क्या वे जाति व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय थे?

सत्ता का दृढ़ीकरण

राज्य के गठन की प्रक्रियाओं के माध्यम से कई भौगोलिक बदलाव हुए। सदियाँ बीतने के साथ ही ज़्यादा से ज़्यादा भू-क्षेत्र को खेती तथा बस्तियाँ बसाने के उपयोग में लिया जा रहा था। इतिहासकार बी.डी. चट्टोपाध्याय प्रारम्भिक मध्ययुगीन राजस्थान में राजपूतों के उद्भव के अध्ययन में यह बताते हैं, कि 861 ई. के एक अभिलेख में एक ऐसे इलाके में बाज़ारों और व्यापारियों के स्थापित होने की बात की गई है, जो उससे पहले तक प्रकट रूप से 'अच्छे लोगों' के रहने योग्य जगह नहीं थी। यह क्षेत्र बाद में ब्राह्मणों, सैनिकों और व्यापारियों से भर गया था। ये संकेत हैं कि प्रारम्भिक मध्य युग में जनजातीय बस्तियों पर किस तरह अन्य लोग काबिज हो गए थे। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में जनजातीय समाजों का राज्य समाजों में इस तरह से रूपान्तरण हो रहा था। राजपूतों के नाम से जाने गए शासक अलग-अलग उद्गमों वाले लोगों के एक ऐसे मिश्रित समूह का प्रतिनिधित्व करते थे जो भूमि पर नियंत्रण करने में सफल हो गए थे।

ऐसा नहीं है कि हमेशा ही दूसरे लोगों द्वारा जनजातीय समुदायों को भगाकर उनकी ज़मीनों पर कब्जा कर लिया जाता था। ऐसे भी कई उदाहरण हैं जहाँ ये जनजातीय लोग नई व्यवस्था का ही हिस्सा बन गए। इस तरह यह भी माना जाता है कि मेडा लोगों जैसे कुछ जनजातीय समुदायों ने तो राजपूतों का दर्जा तक हासिल कर लिया था। इसलिए राजपूतों का अस्तित्व में आना एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसका राज्य के बनने की दिशा में हो रहे रूपान्तरण से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कई उभरते शक्तिशाली वंश साथ आए, और इस तरह सत्ता का दृढ़ीकरण हुआ व राजपूत वंशों का जन्म हुआ। उभरते हुए विभिन्न शक्तिशाली वंशों के लोगों के बीच विवाह सम्बन्ध होना साथ आने का एक प्रचलित तरीका था। उदाहरण के लिए हूण जिन्होंने अच्छी-खासी राजनैतिक ताकत हासिल कर ली थी, राजपूत वंश की सूची में जुड़ गए।

किले और राजमहलः सत्ता के स्थानिक केन्द्र

सत्ता के दृढ़ीकरण के दौर में ही राजस्थान में बड़े पैमाने पर किलों का भी निर्माण हुआ। आत्मरक्षा के अलावा, किले के अन्य उद्देश्य भी होते थे। इससे उभरते शासक परिवारों को अपनी सत्ता को स्थानिक रूप से केन्द्रित करने में और उसका प्रदर्शन करने में मदद मिलती थी। यह आसपास के ग्रामीण इलाकों को नियंत्रित करने का एक तरीका बन गया। 11वीं से 12वीं सदी के आसपास, राजपूतों का उदय एक सामाजिक-स्थानिक घटना बन गई। इसने प्रारम्भिक क्षत्रिय समूहों के राजनैतिक दर्जे को क्षीण करना शुरू किया और वे लोग दूसरे व्यवसायों को अपनाने लगे। अब राजस्थान में शासक

वर्ग के लिए प्रचलित शब्द 'क्षत्रिय' के बजाय 'राजपूत' हो गया था।

शासक वर्ग के लोग धन-दौलत और सत्ता का उपयोग करके ऐसा जीवन जीते थे जो उनके द्वारा शासित लोगों के जीवन से बहुत अलग था। उन्होंने ऐसे राजमहल बनवाए जिनमें कई लोगों के बेहतरीन और खूबसूरत काम का नमूना थे। कई कारीगरों और मज़दूरों ने मिलकर इन्हें बनाया था। पर आम तौर पर हमें ऐसे कारीगरों के नाम या उनके पते-ठिकाने के बारे में कुछ पता नहीं चल पाता क्योंकि राजमहलों को उनमें रहने वाले राजाओं और रानियों के नामों से जाना जाता है।

किले/गढ़ी सुरक्षा के उद्देश्यों से बनाए जाते थे।

दृश्यात्मक मानचित्र में आप जयपुर के राजमहलों को देख सकते हैं। मानचित्र के किन अन्य स्थानों में राजमहल दिखाई देते हैं?

शासक वर्ग

शासक वर्ग का मतलब सिर्फ शासक और उसके मंत्रियों से नहीं था...।

...बल्कि जागीरदारों से भी था जो लोगों से कर वसूली करते थे।

लोगों से राजस्व के संग्रह का काम सामन्ती सरदारों द्वारा किया जाता था जो राजा या शासक के लिए काम करते थे। सामन्ती सरदारों को जागीरदार या इस्तिमरदार या कोटरी ठिकाना जैसे अलग-अलग नामों से जाना जाता है। वे ज़मीन की पैदावार का एक हिस्सा लोगों से लेते थे और इस प्रकार वे शासकों तथा लोगों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गए थे। लोगों से लिया जाने वाला यह हिस्सा पैदावार के एक चौथाई हिस्से से लेकर एक तिहाई हिस्से तक हो सकता था। पर अक्सर ये लोग इससे अधिक वसूली करते थे और अतिरिक्त वसूली को अपने पास रख लेते थे। राजा ज़मीन का मालिक होता था; जागीरदार मालिक नहीं होते थे। किसी जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर राजा किसी अन्य जागीरदार की नियुक्ति कर देता था। इस्तिमरदारी में इस्तिमरदार की भूमिका ठीक जागीरदार जैसी होती थी, पर उसे ज़मीन का मालिक माना जाता था और उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र अगला इस्तिमरदार बन जाता था।

वह कृषि भूमि जिस पर राज्य द्वारा राजस्व वसूला जाता था, उसे खालसा कहते थे। इसे कुएँ द्वारा सिंचित क्षेत्रों (जैसे नागौर), तालाब द्वारा सिंचित क्षेत्रों (जैसे उदयपुर, भीलवाड़ा, सवाई माधोपुर), वर्षा द्वारा सिंचित क्षेत्रों तथा असिंचित क्षेत्रों (पश्चिमी राजस्थान का अधिकांश हिस्सा) में विभाजित किया गया था। खेती के अलावा नमक, घी तथा अन्य उत्पादों पर भी राजस्व वसूला जाता था।

शासक व जागीरदार...लगता है ये सभी पुरुष ही होते थे। और इन वर्गों की महिलाएँ क्या करती थीं?

हवा महल से हमें शासक वर्ग की महिलाओं के बारे में कुछ पता चलता है।

हवा महल 1799 में बनाया गया था, इसमें बारीकी से तराशी गईं 953 खिड़कियाँ हैं जिन्हें झरोखा कहा जाता है। इन खिड़कियों से अन्दर आने वाली हवा इस महल को बहुत हवादार बना देती है। इसीलिए इसे हवा महल नाम दिया गया। यह महल एक खास वजह से बनाया गया था। राज परिवार की महिलाएँ महल में ही बैठकर इन झरोखों से सड़क पर निकलने वाली बारातों, सवारियों, उत्सवों तथा वहाँ की रोजमर्रा की जिन्दगी को देख सकती थीं। और इस तरह वे दूसरे लोगों की नज़रों से भी बच जाती थीं!

इन परिवारों की महिलाएँ सड़कों पर नहीं निकल पाती थीं!

रुदाली

ऊँची जातियों की महिलाओं को सामाजिक जीवन के कई पहलुओं से दूर रखा जाता था। वे अपना अधिकांश जीवन अपने घरों में ही बिता देती थीं। ये बन्धन उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर भी लागू होते थे। परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर भी ऊँची जाति के परिवारों की महिलाओं को सार्वजनिक रूप से रोने और इस तरह से अपनी भावनाओं

को प्रगट करने की इजाजत नहीं थी। पर मृत्यु होने पर सामाजिक रूप से शोक तो अभिव्यक्त किया जाता था। तो इसके लिए राजस्थान में कई जगहों पर एक ऐसी परम्परा विकसित हो गई थी जहाँ वंचित जातियों की महिलाओं को सुविधा सम्पन्न जातियों के पुरुषों की मृत्यु होने पर सार्वजनिक रूप से शोक मनाने के लिए बुलाया जाता था। ऐसी महिलाएँ रुदाली कहलाती थीं जिसका शाब्दिक अर्थ है 'रोती हुई महिलाएँ'।

1993 में कल्पना लाजमी ने 'रुदाली' शीर्षक से एक हिन्दी फिल्म का निर्देशन किया था। यह फिल्म एक ऐसी लघु कथा पर आधारित थी जो रुदालियों की जिन्दगियों की गहराई में जाती थी और इसे बंगाली लेखिका महाश्वेता देवी ने लिखा था।

कला के केन्द्रों के रूप में राजदरबार

शासक वर्ग अपनी धन-दौलत का इस्तेमाल मनोरंजन के लिए करते थे और राजाओं व जागीरदारों के दरबार अक्सर कई कलाओं के प्रदर्शन का केन्द्र बन जाते थे। नृत्य, कठपुतली के खेल, संगीत और चित्रकारी जैसी कलाओं के फनकारों को शासकों द्वारा पुरस्कृत किया जाता था। सबसे अच्छे प्रस्तुतकर्ताओं और कलाकारों को अपने-अपने दरबारों में लाने के लिए राजाओं के बीच प्रतिस्पर्धा बनी रहती थी। इन दरबारों में चित्रकला के दो महत्वपूर्ण स्वरूप पनपे – भित्ति चित्रकारी और लघु चित्रकारी।

लघु चित्रकारी मंगोल और फारसी परम्पराओं से उपजी थी, और बाद में इस पर कई अन्य शैलियों का भी प्रभाव पड़ा। यह चित्रकारी की एक ऐसी शैली है जो मूलतः अकेले पत्रों (सिंगल शीट्स) पर और की जाती थी या उन्हें चित्र संग्रहों (अलबम) में रखा जाता था। चित्रकारी की यह विधा 16वीं सदी में, तथा 17वीं सदी के प्रारम्भ में अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में फली-फूली और इसे मुगल चित्रकारी भी कहा जाता है।

18वीं सदी के मध्य तक, चित्रकारी की ऐसी ही शैलियाँ राजपूताना के दरबारों में विकसित हो गई थीं और इन्हें राजपूत या राजस्थानी चित्रकारी कहा गया। इनके लिए रंग मुख्यतः कुछ खास खनिजों, पौधों, शंखों और कीमती पत्थरों तक से लिए जाते थे। सोने और चाँदी का उपयोग भी किया जाता था। रियासतों ने विभिन्न कलाकारों को संरक्षण दिया और इस तरह से कई शैलियों का जन्म हुआ। राजस्थान में उभरी चित्रकारी की चार मुख्य शैलियाँ मेवाड़, मारवाड़, हदोती और जुनदर कही जाती हैं। आज भी जयपुर के कलाकारों द्वारा लघु चित्रकारी की जाती है।

चित्रः डिस्परस्ड रसिकप्रिया (लवर्स ब्रेवियरी) का एक पन्ना, बीकानेर, 1685

चित्रः आराम करता हुआ सिंह, अकबर के समय (1556 – 1605) में बनाया गया

निरन्तरता का भूगोल

हमारे देश में अब रियासतों का शासन या जागीरदारी व्यवस्था नहीं है। तत्कालीन रियासतों के दरबारों के कई संगीतज्ञ, कवि और कलाकार अपनी नौकरी खो बैठे थे। पर यह देखा जा सकता है कि इनमें से कई, जैसे मांगणियार, धोली, नट, लंगा और धनही आज भी अपनी प्रस्तुतियों को जारी रखे हुए हैं।

कलाकारों के ऐसे कई समुदायों को आम लोगों द्वारा सहारा दिया जाता है।

जिसका मतलब यह हुआ कि लोग इन कलाकारों को पैसा देते हैं।

ताकि वे अपने गायन, नृत्य और अभिनय को जारी रख सकें।

मांगणियार

रियासतों के शासन के दौरान किया गया लेखन आम तौर पर राजाओं, रानियों, उनके दरबारों और उनके द्वारा किए गए युद्धों से ताल्लुक रखता था। लेखक राजाओं और सम्पन्न लोगों के लिए काम करते थे। इन लेखकरों साधारण लोग इतने महत्वपूर्ण नहीं लगते थे कि उनके बारे में लिखा जाए। तो इनकी कहानियाँ साधारण लोगों के बारे में नहीं होती थीं। लेकिन मांगणियार लोग एक अलग ही परम्परा का पालन करते थे। मांगणियार राजस्थान के संगीतकार हैं जो मुख्यतः

जैसलमेर, बाड़मेर, जालौर, बीकानेर और जोधपुर में बसते हैं। वे और अन्य समुदाय जैसे भाट, राव, भद्री और नट लिखते तो नहीं थे लेकिन उन्होंने कहानी कहने की एक अलग परम्परा तैयार की थी। उनके गीतों और किस्सों में अतीत की घटनाओं का वर्णन किया जाता है। वे खुद अपने परिवारों की 10 से 15 पीढ़ियों के वृत्तान्त बड़ी आसानी से याद रख सकते हैं। वे लोगों के सामने संगीत की सेवाएँ देते हैं और बदले में उन्हें गाय-बैल, ऊँट, बकरियाँ और नकद पैसे मिल जाते हैं।

मुझे अपनी परदादी का नाम नहीं मालूम!

मुझे भी नहीं पता। मैं अपनी माँ से पूछूँगी।

हाँ, उन्हें पता होगा।

पर क्या उन्हें उनकी परदादी का नाम पता होगा?

नीचे एक मांगणियार द्वारा सुनाई गई कहानी दी गई है, जो कोमल कोठारी की किताब से ली गई है:

"हमीर सिंह भाटी द्वारा मरुस्थल में हमीरा गाँव बसाया गया था। वे जैसलमेर के राजा के राजपूत परिवार के थे। वे राजा के छोटे भाई थे, इसलिए खुद राजा नहीं बन सके थे। हमीर सिंह अपने मवेशियों और गायों के झुण्ड की देखभाल किया करते थे और उन्हें लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान जाया करते थे। जैसलमेर से नचना जाने के रास्ते में, उन्हें घास और पानी वाली एक अच्छी जगह मिली। उन्होंने वहाँ धीरे-धीरे एक गाँव बसा दिया। इस गाँव को हमीरा कहा गया। हमीर सिंह के साथ बहुत सारे लोग वहाँ रहने को आए – जैसे बढ़ई, दर्जी, नाई, चर्मकार और भील रखवाला। समय बीतने के साथ, इस गाँव का अपना एक स्वरूप बन गया। और तब संगीतकारों को गाँव में बुलाया गया।"

तब तक हमीर सिंह का निधन हो चुका था। उनकी जगह सबल सिंह ने ले ली थी। उन्होंने संगीत सेवाओं के लिए मीठू खान को आमंत्रित किया। जब मीठू खान आए, तो पगड़ी बाँधने की रस्म, 'साफा बँधाई', पूरी की गई। इस रस्म के द्वारा मीठू खान सबल सिंह के राजपूत परिवार के साथ जुड़ गए। उन्होंने सिर्फ इस राजपूत परिवार को ही नहीं बल्कि रियासत की सेवा में लगे दूसरे लोगों जैसे दर्जियों, नाइयों, बढ़इयों इत्यादि को भी अपनी संगीत सेवाएँ दीं।

जब मीठू खान हमीरा आए तो उन्हें दो अलग-अलग राजपूत समूहों – भाटी और राठौर – द्वारा आमंत्रित किया गया था। दोनों परिवारों ने उनके साथ साफा बँधाई की रस्म की थी। इसलिए उन्हें इन दोनों परिवारों का, तथा बढ़इयों और दर्जियों का संरक्षण प्राप्त हुआ। लगभग 15 साल पहले वे अपनी सेवाएँ इन्हें देते थे:

60 भाटी परिवारों का

80 राठौर परिवारों को

10 सुथार परिवारों को

16 मेघवाल परिवारों को

4 कुमान परिवारों को

12 भील परिवारों को

आज मीठू खान के परिवार के कई सदस्य इमारतें बनाने में तथा दूसरे निर्माण कार्यों में मजदूरी का काम करते हैं। उन्हें अभी भी उनके संरक्षक परिवारों से कुछ आमदनी हो जाती है। इनमें से कुछ लोग गाते हैं, कुछ वाद्य यंत्र बजाते हैं। वे अतीत के किस्से कहानियाँ भी सुनाते हैं।

आपने अभी पगड़ी बाँधने की रस्म के बारे में पढ़ा। पगड़ियाँ राजस्थानी संस्कृति का एक विशेष लक्षण हैं। ये अलग-अलग रंगों और शैलियों की होती हैं। केसरिया पगड़ियाँ अक्सर शादियों में पहनी जाती हैं जबकि सफेद पगड़ियाँ शव यात्राओं में पहनी जाती हैं, तथा खाकी, नीली व गहरे कत्थई रंग की पगड़ियाँ शोक प्रगट करने जाते समय पहनी जाती हैं। पगड़ियों के प्रकारों को लेकर बहुत कड़े जातीय भेद हैं। उदाहरण के लिए भेड़ पालक लाल पगड़ियाँ पहनते हैं जबकि

बिश्नोई लोग सफेद पगड़ियाँ पहनते हैं। जनजातीय समुदाय अक्सर छपाई वाली पगड़ियाँ पहनते हैं। ऐसा कहा जाता है कि राजस्थान में हर 15 किमी चलने पर पगड़ी बाँधने की शैली बदल जाती है। पगड़ी पहनने की शैली और उसका रंग समाज में उस व्यक्ति के दर्जे को भी दर्शाते हैं। मौसम तथा उत्सवों के आधार पर भी पगड़ियों के अलग-अलग प्रकार होते हैं जैसे बसंत पंचमी पर पहनी जाने वाली पीली पगड़ी और होली, दीपावली, रक्षा बंधन तथा दशहरा पर पहने जाने वाली अलग-अलग रंगों की पगड़ियाँ।

बहुरूपिया

बहुरूपिया लोग, राजस्थान में मसखरों और नकलचियों का एक समुदाय हैं। मांगणियारों की तरह वे भी राजाओं और जागीरदारों के दरबारों में अपनी सेवाएँ देते थे। बदले में, बहुरूपियों को खाना और कपड़े मिल जाते थे। बहुरूपिया परिवारों में शादियों के समय, और किसी की मृत्यु हो जाने पर भी, सभी खर्चे राजाओं और जागीरदारों द्वारा उठाए जाते थे। त्यौहारों के दौरान ये लोग कहानियाँ सुनाते थे, लोगों व जानवरों की नकलें करते थे, और सब को हँसाते थे। ऐसा माना जाता है कि ये लोग 14वीं सदी में फारस से मुगलों के दरबारों के साथ भारत आए थे। लोगों और जानवरों की नकल करने की उनकी कला ने राजस्थान में लोक रंगमंच के विकास में मदद की है। वे अलग-अलग लोगों का किरदार निभाते हैं और बहरूपिया शब्द का अर्थ होता है 'कई रूप'।

ऐसी कई रोचक कहानियाँ हैं जो हमें इन लोगों की बुद्धिमत्ता और निर्भीकता का परिचय देती हैं। जिस तरह ये लोग राजाओं की खुशामद और चापलूसी कर सकते थे, उसी तरह ये उनकी आलोचना भी कर सकते थे और उनकी हँसी भी उड़ा सकते थे। यहाँ भांडों से जुड़ा ऐसा ही एक किस्सा दिया जा रहा है, जो नकल करने की कला में माहिर होते हैं:

जयपुर के एक भांड ने राजा को नाराज कर दिया था। राजा ने उसे वहाँ से निकल जाने को, और फिर कभी अपनी शक्ल न दिखाने को कह दिया। एक दिन राजा का एक बड़ा जूलूस जयपुर के बाहर निकला। वह भांड एक पहाड़ी पर चढ़ा हुआ था जब राजा वहाँ से गुजरा। उसने अपने नितम्बों पर आटा पोत रखा था और वह झुकी हुई स्थिति में खड़ा था। राजा जब वहाँ से गुजरा तो उसके सामने भांड के नितम्ब थे। राजा इस बात से बहुत नाराज़ हुआ। उसने भांड को बुलाया और उससे पूछा कि वह इस तरह से क्यों खड़ा था?

मैं राजा जी के प्रति अपना सम्मान दिखाना चाहता हूँ। पर राजा जी ने मुझे आदेश दिया था कि मैं कभी उन्हें अपना चेहरा न दिखाऊँ! मैं और क्या कर सकता हूँ?

राजा उसकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर हँस दिया।

तुम दरबार में वापस आ सकते हो!

आपको नीचे दिए गए एक बहूरूपिया नाटक को पढ़ने में मजा आएगा:

(यह कहानी जॉन ऐमिघ और उलराइक ऐमिघ की रचनाओं से ली गई है)

पुलिस स्टेशन में...

मैं आपके पाँव पकड़ती हूँ साहब...हम लोग चोरी नहीं करते! हम पूरी तरह निर्दोष हैं।

बकवास मत करो! और चुपचाप चलती रहो!

अरे साहब! हमें पुलिस स्टेशन तक मत घसीटिए! हमने चुराया ही क्या है? हम तो बस छोटी-मोटी चीज़ें चुराते हैं। हमने कोई सोना चुराया है क्या, जो आप हमें पुलिस स्टेशन ले जा रहे हैं?

बोला ना चुपचाप चलती रहो!

अरे साहब! हम चोरी नहीं करते! चाहो तो उससे पूछ लो! हमने चोरी करना छोड़ दिया है साहब! सिर्फ छोटी-मोटी ज़रूरी चोरियों के अलावा हम कुछ नहीं चुराते। हमने बकरियाँ नहीं चुराई हैं, साहब।

कितनी बकरियाँ चुराई हैं तुमने? और उन्हें किसको बेचा है?

हमने उन्हें कसाई को बेच दिया था। पर वह कल मर गया। इसमें हम क्या कर सकते हैं?

कितनी बकरियाँ थीं? पूरा सच बताओ!

अरे साहब, मैंने सिर्फ तीन बकरियाँ चुराई थीं। और फिर भी लोग कहते हैं कि हम सोना चुराते हैं! अरे साहब, हम लोग तो मटन (बकरी का मांस) तक नहीं खाते! हम तो ठण्डा बासी खाना माँग-माँग कर अपना गुजारा करते हैं!

अच्छा होगा कि आइन्दा ऐसा न हो! यहाँ ज़मीन पर बैठो...और अपना मुँह बन्द रखो!

अरे साहब, मुझे बहुत पछतावा है। मैं अपने हाथ अपने मुँह में रखती हूँ। हम क्या चुराते हैं साहब? मैं आपकी कसम खाती हूँ!

मेरी कसम खाने की तेरी हिम्मत कैसे हुई?

मैं आपकी कसम फिर कभी नहीं खाऊँगी साहब। हम माँगे हुए खाने पर ज़िन्दा हैं साहब। मैं आपकी कसम खाती हूँ साहब। हम सिर्फ छोटी-मोटी चीज़ें या सोना ही चुराते हैं। सोने और छोटी चीज़ों के अलावा हम कभी कोई चोरी करते ही नहीं!

बहुरूपिया सड़कों पर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। आज उन्हें सहारा देने के लिए कोई राजा या दरबार नहीं हैं, लेकिन उनके नुक्कड़ नाटकों को आम जनता देखती है और नाटक खत्म होने पर लोग उन्हें पैसा भी देते हैं।

7

मीरा और राजस्थान का सामाजिक परिवेश

राज्यों के निर्माण से सम्बन्धित सामाजिक दायरों और सत्ता के सम्बन्धों को भारत की ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने वैधता प्रदान की थी। इन प्रचलनों को कर्मकांडों द्वारा मजबूती प्रदान की गई। पर अलग-अलग स्थानों और कालों में इन प्रचलनों को चुनौती दी गई और उनमें बदलाव करने की कोशिश की गई। बुद्ध और महावीर इस तरह के सबसे शुरूआती प्रयासों को निरूपित करते हैं। कई सदियों बाद सूफी और भक्ति आन्दोलनों ने प्रभावशाली धार्मिक विचारों और परम्पराओं को चुनौती दी। राजस्थान में मीरा ने सम्पत्ति, जाति और लिंग पर आधारित सामाजिक सत्ताओं और दायरों पर सवाल खड़े किए। रजवाड़ों और रियासतों का शासन भले ही समाप्त हो गया है, पर असमान आर्थिक और सामाजिक रिश्ते आज भी देश के सामाजिक भूगोल की पहचान बने हुए हैं। और आज भी इस व्यवस्था का विरोध किया जाता है, जैसे कि राजस्थान में मीरा के भजनों द्वारा।

मीराबाई का नाम तो आपने सुना ही है। आपने उनके बारे में भजनों या कहानी की किताबों से जाना होगा या फिर उनके बारे में फिल्मों में देखा होगा।

वे कृष्ण की महान भक्त थीं।

मीरा राजपूत थीं, और उनकी शादी एक राजपूत राजकुमार से हुई थी।

पर वे उसके साथ नहीं रहना चाहती थीं। उन्हें तो सिर्फ कृष्ण की परवाह थी।

मेरी माँ एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी के गाए हुए मीरा के भजनों को सुनती हैं।

सुब्बुलक्ष्मी, जो कर्नाटक शास्त्रीय संगीत की सुप्रसिद्ध गायिका थीं, ने मीरा के भजन गाए हैं जिनसे हमें कृष्ण के प्रति मीरा के समर्पण का पता चलता है। पर कुछ दूसरे प्रकार के गायक हैं जो मीरा की एक अलग कहानी हमें सुनाते हैं। ये गायक भजनिक – भजनों के गायक – कहलाते हैं, और ये अधिकांशतः राजस्थान के मेवाड़ की महिलाएँ होती हैं। ये खेतों में या ईंट के भट्ठों में काम करने वाली महिलाएँ होती हैं। ये राजपूत या अन्य किसी सुविधा सम्पन्न जाति की नहीं होती। तथाकथित 'नीची' जाति की ये महिलाएँ मीरा के भजन गाती हैं। गाने की यह परम्परा लम्बे समय से चली आ रही है। उनके गीत हमें ऐसे इतिहास के बारे में बताते हैं जो आम तौर पर लिखा हुआ नहीं है, क्योंकि ये ऐसी बातें हैं जिनके बारे में शक्तिशाली राजपूत लोग लिखना नहीं चाहेंगे।

मेवाड़ के राजपूतों को अपनी लड़ाइयों और अपने योद्धाओं के बारे में बताना और लिखना अच्छा लगता है।

पर हम तो मीरा को गाते हैं।

मेवाड़ दक्षिणी राजस्थान की एक रियासत थी। मीरा की शादी मेवाड़ के राणा से हुई थी। पर उनका मन कभी इस शादी में नहीं लगा। वे तो भक्त बनना चाहती थीं और उन्होंने रविदास को अपना गुरु बनाया। रविदास एक भक्त थे और चर्मकार जाति के थे।

भक्त कौन होता है?

भक्त वह व्यक्ति है जो 'भक्ति' में लीन होता है। भक्ति एक ऐसी विचारधारा और आचरण-पद्धति थी जो 5वीं से 10वीं शताब्दियों के बीच दक्षिण भारत में उभरी थी। 12वीं और 18वीं सदियों के बीच यह विचारधारा पूरे भारत में फैल गई थी। इस विचारधारा ने समाज से गैर-ज़रूरी कर्मकांडों और कृत्रिम सीमाओं को हटाने का प्रयास किया।

जैसे कि जाति व्यवस्था?

हाँ, इस आन्दोलन ने जातीय भेदों और ब्राह्मणवादी रस्मों रिवाजों को स्वीकार नहीं किया। इस आन्दोलन ने लोगों को

सहिष्णुता और प्रेम का सन्देश दिया। इस आन्दोलन ने बहुत सारे भक्तिमय साहित्य, संगीत और कलाओं को जन्म दिया। और इसने आम जनता की भाषा में लोगों से संवाद किया।

यह तो बहुत कुछ सूफीवाद जैसा है।

मीरा और हाशिए पर रहने वाले लोग

राजपूतों को यह बात अच्छी नहीं लगी कि मीरा ने रविदास को अपना गुरु बनाया था। राजपूतों द्वारा बताई जाने वाली मीरा की कहानियों और भजनिकों द्वारा बताई जाने वाली मीरा की कहानियों में बहुत ज़्यादा अन्तर है। भजनिक महिलाओं को मीरा से बहुत लगाव है। ये गीत मीरा के समय से ही, जो कि 16वीं सदी में हुई थीं, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिलते रहे हैं।

ये गीत लगभग 400 सालों से गाए जाते रहे हैं!

और यह स्थिति बदली नहीं है।

ये गीत ऐसे दस्तावेजों जैसे हैं जिनसे हम अतीत के बारे में जान सकते हैं।

जैसे मांगणियार लोग अतीत को याद रखते हैं।

पर ये लोग इन गीतों को आज भी क्यों गाते हैं?

मीरा तथाकथित 'नीची' जातियों, जैसे चर्मकारों, झाड़ू लगाने वालों और बुनकरों द्वारा याद की जाती हैं और गाई जाती हैं। मीरा के भजन हमें बताते हैं कि जब दो ऐसे लोग करीब आते हैं, जिनमें एक सुविधा सम्पन्न जाति का और दूसरा वंचित जाति का हो, तो समाज में कैसा तनाव उत्पन्न होता है।

15वीं और 16वीं सदियों में यूरोपीय लोगों द्वारा भारत में बने हथकरघा निर्मित सूती कपड़े और परिधानों का व्यापार किया जाता था। इस वजह से, और ज़्यादा कपड़ा बनाया जाने लगा, और हथकरघा कामगार वैश्विक व्यापार के लिए महत्वपूर्ण उत्पादक बन गए। पर अभी भी उन्हें जाति व्यवस्था में 'नीचा' ही समझा जाता था। उनके लिए ये स्थितियाँ नहीं बदली थीं।

वे इस स्थिति को लेकर बहुत नाराज होते होंगे।

और विरोध में मीरा के भजन गाते होंगे!

मीरा बदलाव का प्रतीक थीं। रविदास को अपना गुरु स्वीकार करके, तथा सादा जीवन बिताकर, मीरा ने जाति व्यवस्था के सख्त नियमों को तोड़ा था। उन्होंने सुविधा सम्पन्न जातियों को बहुत नाराज़ कर दिया था। और उन्होंने सुविधाहीन जातियों के बीच अपनी खास जगह बनाई थी।

दलित समुदाय

भारत के सामाजिक भूगोल का स्वरूप, प्रमुख रूप से, जाति व्यवस्था द्वारा, तथा जाति व्यवस्था के भीतर सुविधाहीन जातियों के प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ उन लोगों के प्रतिरोजों के द्वारा निर्मित हुआ है। आज इन समुदायों को दलित कहा जाता है। भारत में इन्हें सामाजिक परिवेशों से बाहर रखा जाता रहा है। और यह स्थिति बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। जबकि इन लोगों के कार्यों के आर्थिक- भौगोलिक निहितार्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये लोग हम सब के लिए भोजन, कपड़ा, मकान, मेज-कुर्सी, बरतन और जूते बनाते हैं। फिर भी इन्हें सामाजिक और स्थानिक बहिष्कार झेलना पड़ते हैं, और इन्हें 'अछूत' माना जाता है – यानी ऐसे लोग जिनके साथ सुविधा सम्पन्न जातियों के लोगों को मिलना जुड़ना नहीं चाहिए। यहाँ तक कि इन लोगों को कई कुँओं, तालाबों, हैंडपम्पों और नलों से पानी भी नहीं लेने दिया जाता। देश के कई हिस्सों में आज भी यह व्यवहार जारी है।

हाथ से मैले की सफाई और सिर पर मैला ढोने की प्रथा

देश के कई शहरों और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में सूखे शौचालयों का इस्तेमाल किया जाता है। इन शौचालयों को हर दिन दलितों द्वारा, खासतौर पर महिला कर्मचारियों द्वारा झाड़ुओं और टिन की चादरों का इस्तेमाल करके साफ किया जाता है। मैले को पहले डलियों में इकट्ठा किया जाता है, और फिर उसे सिर पर रखकर ढोया जाता है और किसी स्थान पर पटक दिया जाता है। जाति व्यवस्था ने इस प्रथा को ईजाद किया था कि मैला सफाई का यह कार्य दलितों द्वारा किया जाएगा। अक्सर, डलियों में रखा मैला रिसकर उनके चेहरों पर आ जाता है, और इन कर्मचारियों पर अनेक तरह के विषाणुओं और कीटाणुओं के संक्रमण का खतरा मंडराता रहता है। इस समुदाय में तपेदिक का रोग बहुत अधिक फैलता है।

सिर पर मैला ढोने और सूखे शौचालयों का निर्माण (प्रतिबन्ध) कानून 1993 में कहा गया है कि, "कोई भी व्यक्ति मनुष्य के मल को सिर पर उठाकर ले जाने, या सूखे शौचालय निर्मित करने या उनके रखरखाव का काम नहीं करेगा, ना ही किसी अन्य व्यक्ति को इन कामों के लिए रखेगा, और ना ही किसी को इन कामों के लिए रखे जाने की अनुमति देगा।"

इस कानून के बावजूद, आज भी राजस्थान में कई जगहों पर सिर पर मैला ढोने की यह अमानवीय परम्परा जारी है। कई संगठन लोगों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए काम करते हैं। फ्रंटलाइन पत्रिका में सफाई कर्मचारी आन्दोलन की एक सदस्य द्वारा सुनाया गया एक वर्णन छपा हैः

"मुझे याद है जब पहली बार मुझे अपने सिर पर मैले से भरी डलिया उठाकर चलना था। मैं फिसल गई और नाले में गिर पड़ी। कोई मुझे उठाने आने को तैयार नहीं था क्योंकि वह डलिया बहुत गन्दी थी और मैं पूरी तरह से गन्दगी से भिड़ी हुई थी। मैं वहाँ बैठी रही, चीखती रही, जब तक कि एक अन्य मैला ढोने वाली महिला कर्मचारी वहाँ नहीं आ गई। उसने पाइप से पानी डालकर मुझे साफ किया और मुझे घर ले गई। पर उस दिन, मुझे लगा कि मैं इस संसार की सबसे अभागी सन्तान हूँ।"

इस तरह, जाति व्यवस्था द्वारा संचालित सामाजिक भूगोल न सिर्फ सुविधा सम्पन्न जाति के अधिकार वाले स्थानों से दलित समुदाय को दूर रखता है, बल्कि रोजमर्रा के कामों में भी उन्हें अप्रिय और मुश्किल स्थितियों में धकेल देता है।

विरोध के गीत

कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लोग इन बातों का विरोध करते हैं...।

...और महिलाएँ व दलित लोग मीरा के भजन गाते हैं।

मांगणियार समुदाय भी मीरा को गाता है। किसान भी मीरा को गाते हैं। किसान राणाओं, यानी राजपूत राजाओं के खिलाफ अपने गुस्से को अभिव्यक्त करने के लिए ये गीत गाते थे। राणा और उनके जागीरदार किसानों से कर वसूल करते थे। उनसे विभिन्न अवसरों पर कर वसूल किया जाता था। अगर राणा के परिवार में कोई शादी होती, तो किसानों को और अधिक पैसा देना पड़ता ताकि राज परिवार अपने उत्सवों में वह पैसा खर्च कर सके। ऐसे हर अवसर पर किसानों को पैसा देना पड़ता था। इससे वे गरीबी के दलदल में और धँसते जाते थे जिसके परिणामस्वरूप उनके भीतर नाराजगी पनपती थी। वे अपनी ही कड़ी मेहनत का फल भी कभी नहीं भोग पाते थे! राणाओं जैसे ताकतवर लोगों का एक छोटा सा वर्ग ही सामाजिक सुविधाओं का लाभ उठा पाता था। किसानों ने राणाओं का विरोध करने के लिए मीरा भजनों का इस्तेमाल किया।

ये भजन संतों या धार्मिक समूहों द्वारा नहीं गाए जाते हैं।

ये साधारण गरीब लोगों द्वारा गाए जाते हैं।

मीरा कोई देवी नहीं हैं।

लोग मीरा को चाहते हैं क्योंकि उन्होंने साधारण जन के साथ ही रहना पसन्द किया था।

मीरा का एक भजन

(मीरा पर लिखी गई परिता मुक्ता की किताब से लिया गया)

'मैं अपने ससुराल नहीं जाऊँगी माँ,

मेरा मन तो सिर्फ फकीरी में है...

मेरा मन ऊँचे-ऊँचे महलों में नहीं लगता माँ'

मेरा मन तो टूटी-फूटी झोपड़ी में है

मुझे तो बस फकीरी का जीवन जीना है...,

फकीरी मतलब?

फकीर उस व्यक्ति को कहते हैं जो बिलकुल सरल और सादा जीवन जीता है।

'फकीर' शब्द मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'गरीब'। 'फकीर' की उपाधि में यह अर्थ अन्तर्निहित है कि ईश्वर के साथ नाता जोड़ने के लिए आपको भौतिक वस्तुओं और इच्छाओं की ललक छोड़ना पड़ेगी।

मीरा के एक भजन की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

'राणा, मैं ये सारे अलंकार और आभूषण त्याग दूँगी और मैं अपने हाथ में चूड़ियाँ पहनना भी छोड़ दूँगी'

चूड़ियाँ क्यों?

क्योंकि विवाहित महिलाओं को लाल चूड़ियाँ पहनना होती हैं।

यहाँ मीरा इसी बात का विरोध कर रही हैं।

इसी भजन की एक अन्य पंक्ति में कहा गया है, 'मेरी चूड़ियाँ गहरी लाल हैं'। यह पंक्ति मीरा के विधवा हो जाने के समय गाई गई है।

पति के मरने के बाद कोई महिला चूड़ियाँ नहीं पहन सकती।

मीरा इसी बात का यह कहकर विरोध कर रही है कि मेरी चूड़ियाँ तो गहरे लाल रंग की हैं।

विरोधाभासी परिवेश और छवियाँ

मीरा के भजनों में हमें राजस्थान की साधारण महिलाओं के विरोध और संघर्षों की आवाज़ें सुनाई देती हैं। पर यह मीरा की उस छवि से बहुत अलग है जो हम कहानी की किताबों में पढ़ते हैं या फिल्मों में देखते हैं। आइए देखें कि ऐसा क्यों है।

चित्रकथाओं (कॉमिक्स) और कहानी की किताबों में मीरा का कृष्ण के प्रति गहरा प्रेम दिखाया जाता है, पर इनमें मीरा हमें उस तरह की सशक्त महिला नहीं दिखाई देती हैं जैसा कि हम उन्हें भजनिकों के भजनों में पाते हैं।

इन चित्रकथाओं और किताबों में उन्हें दलितों या पीड़ित लोगों के साथ खड़ा हुआ नहीं दिखाया जाता।

साधारण लोगों में मीरा की जो स्मृति है, तथा किताबों में उनके बारे में जो लिखा गया है या फिल्मों में दिखाया गया है, उनमें ज़मीन आसमान का अन्तर है।

परिता मुक्ता, जिन्होंने मीरा का अध्ययन किया है, राजस्थान में प्रचलित दो अलग-अलग धाराओं की बात करती हैं। एक तरफ तो भजनिक लोग हैं जो आज भी मीरा के भजन गाते हैं, और आज के समय में भी इन लोगों के निरन्तर चल रहे संघर्ष में मीरा को याद करते हैं। और दूसरी तरफ राजपूत लोग हैं जो मीरा की सभी स्मृतियों को मिटा देना चाहते हैं। वे तो मीरा की बात भी नहीं करना चाहते। मेवाड़ का कोई भी राजपूत अपनी बेटी का नाम 'मीरा' नहीं रखता। राजस्थान में रजवाड़ों के शासन के दौरान, 'मेवाड़ राज्य से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति अपनी जबान पर मीरा का नाम लाने की जुर्रत

नहीं कर सकता था।' वे लोग मीरा से अत्यधिक घृणा करते थे और मीरा के इतिहास की कोई चर्चा तक नहीं की जाती थी। यदि कोई मीरा की बात करने का दुस्साहस करता भी तो उस व्यक्ति को शासन की सेवा से बाहर कर दिया जाता। परिता लिखती हैं:

"राजपूतों के ही द्वारा मीरा पर जो सबसे तीखा लांछन लगाया गया, और जिसका जहर आज तक कायम है, वह है कि मीरा एक कुल-नाशी थी, यानी अपने वंश का विनाश करने वाली।"

राष्ट्रीय परिवेश में मीरा

1947 के बाद भारतीय राजतंत्र और भूगोल में, ब्रिटिश उपनिवेशवाद से निकलकर भारतीय राष्ट्र निर्माण की तरफ हो रहे बदलाव को अनुभव किया जा रहा था। नया राष्ट्र कैसा होना चाहिए? इस नए राष्ट्र की महिलाएँ कैसी होना चाहिए? गाँधी ने महिलाओं के बारे में इस पारम्परिक हिन्दू दृष्टिकोण की ओर ध्यान आकर्षित किया था कि हिन्दू स्त्री अपने पति के प्रति समर्पित रहती है। उन्होंने मीरा की छवि का इस्तेमाल राष्ट्रवादी आन्दोलन में महिलाओं को संगठित करने के लिए किया। इस छवि के अनुसार मीरा को राणा कुम्भा की पत्नी के रूप में महत्व मिलता है। गाँधी का कहना था कि पत्नी का अपने पति के प्रति समर्पण बहुत ज़रूरी होता है, लेकिन अगर कोई श्रेष्ठ प्रयोजन हो तो इसे बदला भी जा सकता था। उन्होंने कहा कि मीरा के मामले में उसने अपने पति के प्रति समर्पण को कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के उदात्त प्रयोजन के कारण त्याग दिया था। पर मीरा ने जिस तरह से जाति को, तथा विवाह व विधवा जीवन से जुड़े रीति-रिवाजों को मजबूती से नकार दिया था, उसकी चर्चा नहीं की गई। सुविधाहीन जातियों के साथ मीरा की गहरी एकजुटता की भी चर्चा नहीं की गई। मीरा द्वारा राणा को अस्वीकार कर देने की भी चर्चा नहीं की गई। इस प्रकार इतिहास और कला से ऐसे तथ्यों को चुनकर राष्ट्रवादी परिवेशों का निर्माण किया गया जो खास प्रकार की छवियाँ बना पाने में मदद करते थे। राष्ट्रवादी आन्दोलन ने मीरा का जो चित्रण किया, उसके द्वारा मीरा की छवि को भी ऊँची जाति के हिन्दू मूल्यों के अनुसार स्त्री के पारम्परिक दायरे के अनुरूप ढाल दिया गया। मीरा द्वारा जाति तथा लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव पर उठाए गए सवालों को, तथा दलित लोगों में मीरा के प्रति गहरे आदर भाव को भी मीरा की इस छवि में जगह नहीं दी गई।

मीरा ने समाज द्वारा बनाए गए जातीय तथा लिंग-आधारित ढाँचों की बाध्यताओं से मुक्त होने की कोशिश की थी, और सुविधाहीन जातियों तथा महिलाओं के साथ एकजुट होकर एक अलग दायरा बनाया था। पर भारत की स्वतंत्रता के बाद गढ़ी गई मीरा की छवियों को देखना बिलकुल विरोधाभासी है क्योंकि इन छवियों द्वारा मीरा को उसी दायरे में वापस डालने की कोशिश की गई है जिसे वे लगातार अस्वीकार करती रही थीं।

मीरा सामाजिक असमानताओं को बदलने की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती थीं।

लेकिन हम लोग मीरा की जो कहानियाँ सुनते हैं उनमें यह बात उजागर नहीं होती...।

...और इसलिए मीरा की यह छवि भजनिकों की मीरा से बिलकुल अलग है।

8

राजस्थान में व्यापार, व्यापारी और नगर

राजस्थान के भूगोल के स्वरूप को निर्मित करने में उसकी स्थिति का बहुत बड़ा योगदान रहा था। यह एक ओर अरब सागर, तथा दूसरी ओर सिन्धु-गंगा के मैदान व मध्य एशिया के बीच के व्यापारिक मार्गों पर स्थित था। राजस्थान के भूगोल के लिए इस स्थिति के दो प्रमुख निहितार्थ थे – व्यापारिक मार्गों पर नगरों का उभरना, तथा बनियों या व्यापारियों का एक वर्ग के रूप में उभरना। ये बनिया लोग शासकों तथा जनसाधारण के बीच, तथा छोटे व बड़े कस्बों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गए।

समय के साथ व्यापारिक मार्गों का महत्व घटते जाने से मरुस्थली नगरों का भूगोल भी बदला। स्वतंत्रता के बाद और आज के दौर में कुछ नगरों को रक्षा की दृष्टि से रणनीतिक महत्व प्राप्त हो गया है, और कुछ नगर मरुस्थल में पर्यटन के आने से विकसित हुए हैं। आधुनिक राज्य में बैंक जैसी संस्थाओं के उदय से बनियों के सामाजिक-भौगोलिक सम्बन्ध बदल गए हैं।

दूसरे स्थानों की भाँति राजस्थान के नगर भी न सिर्फ परिवहन के महत्वपूर्ण केन्द्र बन जाते हैं, बल्कि वे अपने भीतर सामाजिक असमानताओं के स्थानिक स्वरूपों को भी दर्शाते हैं। वर्ग एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक बन जाता है जो सम्भ्रान्त परिवेशों के साथ-साथ झुग्गी-झोपड़ियों के स्वरूप को भी तय करता है।

अरब सागर से दिल्ली तथा उपमहाद्वीप के अन्य हिस्से को जाने वाले व्यापारिक मार्गों पर स्थित होने के कारण राजस्थान का भौगोलिक रूप से बहुत महत्व था। गुजरात में कैम्बे एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। इन व्यापारिक मार्गों के किनारे कई ताकतवर राजपूत राज्यों का उदय हो गया था। इन राज्यों ने अपनी सम्पत्ति मुख्यतः व्यापार के लिए उनके क्षेत्र में यात्रा करने पर लगाए जाने वाले किरायों से हासिल की थी। व्यापारिक वर्ग के लोगों ने भी प्रमुखता हासिल कर ली थी क्योंकि उनमें से कई राज्य के महत्वपूर्ण सेवक जैसे, सेनापति या मंत्री आदि बन गए थे। कुछ पदों के लिए राजपूत राजा व्यापारिक वर्ग के लोगों को खुद अपने समुदाय के लोगों से ज़्यादा पसन्द करते थे क्योंकि उनके अपने समुदाय के लोग राज्य पर ज़्यादा दावेदारी जता सकते थे।

कृषि तथा सिंचाई का विस्तार

इन राज्यों में कई महत्वपूर्ण स्थानिक विकास हुए। इन व्यापारिक मार्गों के किनारे स्थित महत्वपूर्ण स्थान धीरे-धीरे नगरों के रूप में विकसित हुए और लोगों ने इनके आसपास के ग्रामीण इलाकों में खेती करना शुरू कर दिया। खेती के विस्तार के साथ ही कई उद्देश्यों के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ी। उदाहरण के लिए, कुएँ खोदने की ज़रूरत पड़ी तथा कुँओं से पानी निकालने की व्यवस्थाएँ बनाना पड़ीं। इतिहासकार इरफान हबीब ने कुँओं से पानी खींचने की व्यवस्थाओं के बारे में लिखा है, और यह भी बताया है कि इन व्यवस्थाओं को ज़्यादा सक्षम बनाने के लिए किस प्रकार उनकी तकनीकों में सुधार किया जाता रहा।

कुँओं से पानी कैसे खींचा जाता था?

नोरिआ – इसमें एक खड़ी चकरी होती है जिसकी किनारियों के ऊपर मटकियाँ बँधी रहती हैं

अराहटट्ट – इसमें मटकियाँ किनारियों पर नहीं लगी होतीं, बल्कि किसी माला की तरह एक रस्सी से बँधी होती हैं। इस बनावट में और अधिक गहराइयों से पानी खींचने की क्षमता थी जो कि नोरिआ की बनावट में सम्भव नहीं था। इसका संस्कृत शब्द है अराघट्ट है – अर यानी पहिए के आरे और घट्टा यानी मिट्टी के घड़े। (चित्रः पानी नहर में बह जाता है)।

फारसी चकरी – यह उपकरण ऊपर उल्लिखित बनावटों की तुलना में अधिक परिष्कृत था और यह भूमध्यसागरीय क्षेत्रों और इराक से भारत आया था। यह खड़ी चकरी एक ही जुरी पर एक अन्य चकरी से जुड़ी होती थी। फिर यह चकरी

एक क्षैतिज चकरी से जुड़ी होती थी जिसे बैल या ऊँट द्वारा घुमाया जाता था। इरफान हबीब के अनुसार फारसी चकरी लगभग 1400 ई. के आसपास भारत आई होगी।

कुँओं की खुदाई और पानी खींचने की तकनीकों के निर्माण के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ती थी जो व्यापारियों और साहूकारों से कर्जे के रूप में लिया जाता था।

राजस्थान का बदलता भूगोल और बनियों की भूमिका

14वीं सदी में राजस्थान में कई स्थानिक और सामाजिक आर्थिक बदलाव हुए। इसी काल में पश्चिमी भारत में गुजरात के सुलतानों का प्रभाव भी बढ़ा जिसने व्यापारियों और साहूकारों की भूमिका और मजबूत बना दिया। छोटे व्यापारी किसानों को उधार देने के लिए खुद नगर के बड़े व्यापारियों से पैसा उधार लेते थे। किसानों को अक्सर राज्य का कर चुकाने के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ती थी, और इसके लिए वे व्यापारी-साहूकार से पैसा उधार लेते थे। इस तरह से साहूकार लोग, गाँवों के किसानों और शहरों के बड़े व्यापारियों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उभरे। व्यापारियों और साहूकारों के इस वर्ग का प्रतिनिधित्व राजस्थान में बनिए करते हैं, और ये लोग जाति से वैश्य हैं।

खेती का उत्पादन भी कई कारणों से बढ़ रहा था। शहरों में भोजन की ज़रूरत थी, और कृषि तथा पशु उत्पादों का भी बहुत अच्छा विदेशी व्यापार था। कैम्बे के व्यापारियों के अपने ऐसे जहाज थे जो खाद्यान्न, घी, कपास, नील और जानवरों की खालों को अरब, पूर्वी अफ्रीका, बंगाल और दक्षिण पूर्वी एशिया ले जाते थे। खेती के विस्तार के लिए पैसे की आवश्यकता थी, और यह पैसा व्यापारियों/साहूकारों द्वारा किसानों को उधार पर दिया जाता था। इस प्रकार हासिल किए गए पैसे का इस्तेमाल मकान बनाने में, ज़मीन में सुधार करने के लिए उर्वरक खरीदने में, कुएँ खोदने में तथा बैल व खेती के अन्य उपकरण खरीदने में किया जाता था।

16वीं सदी में राजस्थान और गुजरात में आने वाले क्षेत्र मुगल शासन के अधीन आ गए। मुगल सम्राट अकबर ने राजस्थान के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर विजय हासिल कर उन्हें अपने अधीन कर लिया था। मेवाड़ के राणाओं को छोड़कर बाकी राजपूत शासकों को मुगल शासकों का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इस काल में व्यापार और व्यापारियों का महत्व बढ़ गया था। ज़रूरत के समय मुगल प्रशासन व्यापारिक कारवाँओं को सशस्त्र रक्षक भी मुहैया कराते थे। अगर व्यापारियों को मार्ग में लूटा जाता, तो शासन उसकी भरपाई करने की कोशिश करता था। कई बनियों ने सीधे किसानों से खाद्यान्न प्राप्त करने और उसे बाज़ार में बेचने का अधिकार हासिल कर लिया था। सूखे के समय शासन द्वारा कीमतों को नियंत्रित किया जाता था। कई बनिए राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में बस गए थे। यह राजस्थान का सबसे उत्तर-पूर्वी भाग है जो आज के झुंझनु और सीकर ज़िलों में पड़ता है। कभी-कभी जब शासकों के पास पैसे की कमी हो जाती थी, तो ये व्यापारी उन्हें भी भारी-भरकम कर्जा देते थे और राज्य की सेनाओं के लिए राशन और वेतन का बन्दोबस्त भी कर देते थे।

इतिहासकार डेविड हार्डीमैन बताते हैं कि किस जाति से कितना ब्याज लिया जाना था यह मनुस्मृति में लिख दिया गया थाः

ब्राह्मणों से प्रति माह 2 प्रतिशत

क्षत्रियों से 3 प्रतिशत

वैश्यों से 4 प्रतिशत

शूद्रों से 5 प्रतिशत

इस प्रकार बनियों द्वारा लिया जाने वाला ब्याज सम्भवतः जाति के अनुसार बदल जाता था।

इस तरह तो तथाकथित नीची जातियों के लोग गरीब ही बने रहते।

ऊँची जातियों के लोगों को ब्याज में छूट दी जाती थी।

प्रथाओं तथा कानूनों के द्वारा सामाजिक दायरों को असमान बना दिया गया था।

मनुस्मृति क्या है?

मनुस्मृति प्राचीन वैदिक सनातन धर्म, जिसे आज हिन्दू धर्म कहा जाता है, की ग्रन्थिक परम्परा है।

इसमें क्या कहा गया है?

यह ऋषि मनु और ऋषि भृगु का अन्य ऋषियों के साथ हुआ एक लम्बा वार्तालाप है। इसमें व्यवस्थित जीवन जीने के तरीकों, और सभी सामाजिक वर्गों के लिए दिशानिर्देशों का वर्णन किया गया है।

यह कब लिखा गया था?

विभिन्न विद्वानों ने 1500 ई.पू. से लेकर 500 ई. तक के दौरान इसके लिखे जाने के अलग-अलग समय बताए हैं। यह माना जाता है कि हिमालय के हिमनदों के तेजी से पिघलने से, तथा अरावली पर्वत ृंखलाओं में भारी बारिश होने से इस क्षेत्र में बाढ़ की स्थिति पैदा हो गई थी। क्षेत्र के वरिष्ठ ऋषि इकट्ठा हुए और सबसे बुजुर्ग ऋषि मनु के पास इस बारे में सलाह लेने के लिए पहुँचे कि भविष्य में ऐसी विपदाओं से निपटने के लिए, तथा शान्तिपूर्ण और व्यवस्थित जीवन जीने के लिए क्या किया जाना चाहिए।

मनुस्मृति 2685 श्लोकों के रूप में लिखी गई है। श्लोक में पद्य की पंक्तियाँ होती हैं जिसका संस्कृत के काव्य में अक्सर उपयोग किया जाता है। रामायण और महाभारत लगभग पूरी तरह से श्लोकों में लिखे गए हैं।

मनुस्मृति के विचार जो महिलाओं व दलितों को सामाजिक परिवेशों से दूर करते हैं, आज भी, अनेक मामलों में समाज के मार्गदर्शक मूल्य बने हुए हैं।

राज्य के दायरे के विस्तार के साथ ही ऋण-पत्रों, वचन-पत्रों और सिक्कों के इस्तेमाल के द्वारा आर्थिक सौदों में लिपि का महत्व बढ़ा। बनिए साक्षर हो गए थे, उन्होंने लेखा-जोखा करने के कौशल सीख लिए थे, और वे राज्य की नौकरशाही में भी कार्यरत थे। 19वीं तक राजस्थान के भूगोल में बनियों की सुविकसित भूमिका को ब्रिटिश शासन समझ चुका था और उसने साहूकारों को कृषि उत्पादन में भी पूँजी लगाने के लिए प्रोत्साहित किया।

राजस्थान के बनिए आम तौर पर मारवाड़ी कहलाते हैं। वे अधिकांशतः जैन या वैष्णव हिन्दू होते हैं। बनिया लोग सामान्यतः कस्बों या बड़े गाँवों में दुकानें चलाते थे। इन दुकानों पर अनाज, कपड़ा, तेल, नमक और दूसरे सामान बेचे जाते थे। वे लोगों को सामान और पैसा उधार भी दे देते थे। शासन को कर देते रहने के कारण तथा साहूकारों से लिए गए कर्जों को चुकाते रहने के कारण, किसान हमेशा गरीब ही बने रहते थे। उनके पास भूमि कर देने के लिए, बैल खरीदने के लिए, खेतिहर उपकरणों खरीदने के लिए, शादियों और बच्चों के जन्म के समय होने वाले उत्सवों के खर्चों के लिए, तथा शोक के समय होने वाले कार्यक्रमों के लिए हमेशा ही पैसा कम पड़ जाता था। तो वे लोग हमेशा ही बनियों से कर्जा लेते रहते थे। कटाई के समय, बनिया किसानों के पास जाते और फसल का बड़ा हिस्सा हासिल करने की कोशिश करते। किसानों पर उनकी जबरदस्त गिरफ्त थी और ऐसा इसलिए हो पाया था क्योंकि बनियों को शासन का पूरा समर्थन था।

बनियों को शक्तिशाली बनाने से शासन को कई फायदे हुए।

हाँ, शासन को किसानों को कर्जे नहीं देना पड़ते थे, यह काम बनिए कर देते थे।

लोगों से कर इकट्ठा करने में भी शासन को बनियों की मदद मिल जाती थी।

जब किसानों के पास कर देने के लिए पैसा नहीं होता था, उस समय भी वे बनियों से कर्जा ले सकते थे ताकि राज्य को उसकी देय राशि प्राप्त हो सके।

खेती का उत्पादन बढ़ाने के लिए, बनियों ने भी पूँजी लगाना शुरू किया जो शासन के लिए बहुत लाभकारी हुआ।

पर इस व्यवस्था ने किसानों को गरीब और मजबूर बना दिया।

जैसा कि आप जानते हैं, राजस्थान पर ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन नहीं था, पर वहाँ हुए कई बदलाव भारत में ब्रिटिश हुकूमत होने का नतीजा थे। 1840 का दशक तक पश्चिमी और उत्तरी भारत के बीच स्थित कई पुराने व्यापारिक मार्ग नष्ट हो चुके थे। मारवाड़, बीकानेर और जयपुर के कई बनिए इस क्षेत्र को छोड़कर ब्रिटिश भारत में चले गए थे जो उन्हें अपने लिए ज़्यादा अनुकूल लगता था।

ये लोग ब्रिटिश भारत क्यों चले आए थे?

ब्रिटिश भारत में, भूमि के स्वामित्व की व्यवस्था बदल दी गई थी। शासन को भूराजस्व न दे पाने की स्थिति में ज़मीन के मालिकों को उनकी ज़मीन से बेदखल भी किया जा सकता था। शासन उनकी ज़मीन को नीलाम भी कर सकता था। साहूकार इस स्थिति का फायदा उठाते थे और वे किसानों को उधार देते वक्त प्रतिभूति के रूप में उनकी ज़मीनों के कागजात रख लेते थे। इस तरह ब्रिटिश भारत में साहूकारों ने किसानों पर और अधिक नियंत्रण स्थापित कर लिया था।

डेविड हार्डीमैन बताते हैं कि 100 साल पहले जोधपुर ज़िले की शेरगढ़ तहसील के अंगोलाई में जैन बनियों के करीब 250 परिवार रहते थे, और वे कम से कम 200 दुकानें चलाते थे। 1996 में सिर्फ 15 परिवार रह गए थे। इसी तरह बिलाडा तहसील के बोरुंडा गाँव में पहले 40 परिवार रहते थे और 1987 में वहाँ सिर्फ 8 परिवार रह गए थे। ब्रिटिश काल में इनमें से कई परिवार मद्रास प्रवास कर गए थे।

स्वतंत्रता के बाद, कई चीज़ें बदलने लगीं। भारत सरकार ने साहूकारी के खिलाफ कानून पारित किए, और लोगों को बैंकों तथा सहकारी संस्थाओं के माध्यम से कर्जे देना शुरू किए। इस वजह से बनियों की सुनहरी सम्भावनाएँ कमजोर पड़ गईं थीं, और उन्होंने काम और कमाई के नए मौकों की तलाश करना शुरू कर दिया। उन्होंने खुद को देश की बदलती स्थितियों के अनुकूल बखूबी ढाल लिया है। इनमें से कुछ तो खेती की मशीनें, उपकरण और उर्वरक बनाने वाली राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बिक्री प्रतिनिधि (सेल्स रिप्रेज़ेन्टेटिव) बन गए हैं। और उनमें से कई वित्तीय एजेंट, दलाल और ठेकेदार बन गए हैं।

शहर

पश्चिमी और पूर्वी राजस्थान में शहरों का उदय अलग-अलग सामाजिक भूगोलों पर आधारित है। पूर्वी तथा दक्षिणी क्षेत्रों के लिए पानी की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण सुविधा बन जाती है। चंबल और बनास नदियाँ पूर्वी राजस्थान से पानी की निकासी करती हैं, जबकि दक्षिणी राजस्थान में झीलों की भरमार है। और उत्तरी राजस्थान में नहर के आधुनिक निर्माण से खेती और शहरीकरण का विस्तार हुआ। मानचित्र (पृष्ठ.....) से आप देख सकते हैं कि जल से भरपूर पूर्वी क्षेत्र के बजाय पश्चिमी राजस्थान के बंजर क्षेत्र में शहरों के विकाश का अपेक्षाकृत लम्बा इतिहास है। शहरों के ऐतिहासिक विकास में महत्वपूर्ण कारक की भूमिका निभाने वाले व्यापारिक मार्गों ने पश्चिमी राजस्थान में हुए बदलावों को अत्यधिक प्रभावित किया।

समय गुजरने के साथ सामाजिक-भौगोलिक परिस्थितियाँ बदलीं, और शहरों का आर्थिक आधार भी बदला। उदाहरण के लिए, राजस्थान के शहरों में किलों और राजमहलों की भरमार है, जो रियासतों के शासन के बीते हुए युग की स्थानीय छवियाँ हैं। इन किलों और महलों ने राजस्थान की आज के दौर की पर्यटन अर्थव्यवस्था में नई भूमिकाएँ प्राप्त कर ली हैं।

राजस्थानः शहरों का उदय

झुंझुनू – भूतपूर्व शेखावाटी प्रान्त के केन्द्र में उभरा। इस शहर की स्थापना 15वीं सदी में हुई।

बीकानेर – यह शहर व्यापारिक मार्ग पर विकसित हुआ। इसकी स्थापना 15वीं सदी में हुई।

नागौर – इसकी स्थापना ई.पू. चौथी सदी में हुई। इसका नाम नागा शासकों के नाम पर पड़ा। यहाँ पशुओं के बड़े मेले लगते हैं।

जैसलमेर – एक समय यह शहर मरुस्थल की सीमा चौकी था। इसकी स्थापना 12वीं सदी में हुई।

बाड़मेर – इसकी स्थापना 13वीं सदी में हुई। यह शहर बहाड़ राव या बाड़राव के नाम पर बसाया गया।

जोधपुर – यह शहर व्यापारिक मार्ग पर विकसित हुआ। भूतपूर्व मारवाड़ रियासत की राजधानी रहा। इसे 15वीं सदी में बसाया गया।

उदयपुर – यह शहर 16वीं सदी में बसाया गया। यह भूतपूर्व मेवाड़ रियासत की राजधानी थी।

भीलवाड़ा – इसका यह नाम भील समुदाय के कारण पड़ा जो सम्भवतः 11वीं सदी में यहाँ रहा।

कोटा – 12वीं सदी में बसाया गया। अब यह शहर रेलवे और सड़क मार्ग का एक महत्वपूर्ण जंक्शन है।

अजमेर – यह शहर अरावली पर्वतों से घिरा हुआ है। 7वीं सदी में चौहान वंश ने इसे बसाया।

सवाई माधोपुर – इसे 18वीं सदी में एक नियोजित शहर के रूप में बसाया गया।

जयपुर – यह 18वीं सदी में बसाया गया। आधुनिक राजस्थान राज्य की राजधानी है।

भरतपुर – इसे 18वीं सदी में बसाया गया। यह भूतपूर्व जाट रियासत की राजधानी थी।

अलवर – इसे 18वीं सदी में बसाया गया। यह भूतपूर्व अलवर राज्य की राजधानी थी।

सीकर – 19वीं सदी में जिस जगह लालमनगढ़ किले का निर्माण किया गया था उसकी निचली पहाड़ियों में बसाया गया था।

गंगानगर – उस स्थान पर स्थित है जहाँ सतलज राजस्थान में दाखिल होती है। इस नियोजित शहर को 20वीं सदी में बसाया गया।

थार मरुस्थल के शहर

थार मरुस्थल के बीचो-बीच स्थित शहर जैसे जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर ऐतिहासिक रूप से कारवाँ लेकर चलने वाले व्यापारियों के मार्ग पर विकसित हुए थे। सेनाओं और व्यापारियों के आवासीय परिसर रणनीतिक रूप से व्यापारिक मार्ग पर बनाए जाते थे जहाँ से कारवाँ गुजरा करते थे। उनकी आय का मुख्य स्रोत था इन कारवाँओं से लिया जाने वाला शुल्क। बाद में आसपास के क्षेत्रों में खेती भी की जाने लगी।

नदी घाटियों में, समृद्ध कृषि क्षेत्रों के किनारों पर शहर विकसित हो गए थे।

खेती के विकास से खेती के उत्पादों का व्यापार शुरू हुआ था जिसके माध्यम से शहरों का निर्माण हुआ था।

पर इसके विपरीत थार में, व्यापार और शहरों के विकास की बदौलत खेती का विकास हुआ था।

पर जैसे-जैसे आने वाले सालों में व्यापार और प्रशासन के महत्व में बदलाव आता गया, थार के शहर अपना पिछला आर्थिक महत्व खोते गए। उन्हें मजबूर होकर अक्सर नई अर्थव्यवस्थाओं पर आश्रित होना पड़ता था।

जैसलमेर एक समय व्यापारिक मार्ग की एक महत्वपूर्ण मरुस्थलीय सीमा चौकी थी, और इस स्थिति की वजह से ही इस शहर में बड़ी समृद्धि आई। जोधपुर दिल्ली को गुजरात से जोड़ने वाले रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण रहे मार्ग पर स्थित है। इस शहर को अफीम, ताँबा, रेशम, चन्दन और खजूरों के फलते-फूलते व्यापार से बहुत फायदा हुआ था। बीकानेर, हालाँकि थार मरुस्थल का ही एक भाग है, पर यहाँ स्रोतों का जल पाया जाता है। इसलिए यह मध्य एशिया और गुजरात के समुद्री तट के बीच स्थित व्यापारिक मार्ग पर एक मरुद्यान जैसा था। आप अपने दृश्यात्मक मानचित्र में इन शहरों को देख सकते हैं।

1845 तक बॉम्बे अरब सागर पर एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह के रूप में उभर चुका था, और इससे ज़मीन के व्यापारिक मार्गों के महत्व में कुछ बदलाव आ गए थे। एक सदी बाद, भारत और पाकिस्तान के बँटवारे की वजह से भारत-पाकिस्तान सीमा पर स्थित सभी व्यापारिक मार्ग बन्द हो गए। पाकिस्तान से लगी सीमा पर स्थित होने के कारण जैसलमेर और बाड़मेर

का रणनीतिक महत्व बढ़ गया। जैसलमेर सेना के लिए एक आपूर्ति भण्डार बन गया है। और सेना का उत्तरलाई हवाईअड्डा बाड़मेर ज़िले में स्थित है।

ये शहर मुगल और राजपूत कला तथा वास्तुशिल्प से सुशोभित हैं। कई राजमहलों को, मुख्यतः पर्यटन के उद्देश्यों से, होटलों में परिवर्तित कर दिया गया है। आज, बीकानेर का पूर्व राजपरिवार, हैरिटेज होटल में रूपान्तरित कर दिए गए लालगढ़ राजमहल के एक सुईट (कमरों का समूह) में रहता है। आज जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर शहरों को राजस्थान के महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों के रूप में बढ़ावा दिया जाता है। इनमें से दो शहर, जोधपुर और बीकानेर, अन्य शहरों के साथ हवाई मार्ग से भी जुड़े हुए हैं।

राजस्थान में औद्योगिक विकास

शहरी विकास हमेशा गैर-कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। कृषि-आधारित उद्योगों ने राजस्थान में शहरीकरण की प्रमुख आर्थिक बुनियाद के रूप में प्रधानता हासिल कर ली थी। नीचे दिए गए बॉक्स में दी गई जानकारियों से आप राजस्थान में सूती कपड़ा उद्योग तथा अन्य कृषि-आधारित उद्योगों की बहुतायत को जान सकते हैं। 1950 और 1960 के दशकों तक देश के अन्य भागों की तरह ही राजस्थान में भी आधुनिक औद्योगिक विकास का महत्व बढ़ गया था।

राजस्थान के कुछ शहरों के औद्योगिक आधार

जयपुर – सूती कपड़ों पर बंधानी और ब्लॉक छपाई; पत्थरों और हाथी दाँत पर नक्काशी; सोने, हीरे और रत्नों के आभूषण; नीली नक्काशी वाली चीनी मिट्टी के बरतन; और चमड़े से बनी पहनने व इस्तेमाल करने की वस्तुएँ।

कोटा – सूती कपड़े; तिलहन की पिसाई; शराब उद्योग, दुग्ध उद्योग, धातु उद्योग, हस्तशिल्प, उर्वरक, रसायन, इंजीनियरिंग।

अजमेर – सूती और ऊनी कपड़े; चमड़े से बनी वस्तुएँ; होज़री; जूते; साबुन; दवा उद्योग; इंजीनियरिंग कारखाने; स्टील के सामान बनाने वाले कारखाने; इलेक्ट्रॉनिक सामानों के पुर्जे बनाने के कारखाने।

उदयपुर – कपड़ा; उर्वरक; रसायन; खनन और प्रसंस्करण।

भीलवाड़ा – कपड़ा; तापरोधी ईंट।

सवाई माधोपुर – सूती कपड़े; संगमरमर की वस्तुएँ; चमड़े से बनी वस्तुएँ; जूता उद्योग; लकड़ी का फर्नीचर।

श्री गंगानगर – कपास को ओटाई और उसे दबाने का काम; सरसों के तेल के कारखाने; गेहूँ का आटा बनाने के कारखाने; शक्कर कारखाने।

कोटा उत्तर भारत के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में से एक है।

भीलवाड़ा देश का अकेला ऐसा केन्द्र है जहाँ तापरोधी ईंटें बनाई जाती हैं।

अजमेर, उदयपुर, भीलवाड़ा – इन सभी शहरों में इंजीनियरिंग, दवाइयों, रसायन और उर्वरकों जैसी आधुनिक औद्योगिक बुनियादें हैं।

जयपुर आभूषणों का बड़ा निर्यातक है।

राजस्थान में खनन-आधारित उद्योग भी बहुत उन्नत हैं।

कुछ प्रमुख बातें

नीला शहर

जोधपुर को 'नीला शहर' कहा जाता है, जिसकी वजह है मेहरगढ़ किले के आसपास स्थित, बिलकुल अलग दिखाई देने वाले, नीले रंग से पुते मकान।

ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मणों के घर नीले पुते होते हैं।

जोधपुर पर एक बार दीमकों ने हमला कर दिया था। दीमकों ने यहाँ के पारम्परिक इमारतों को क्षतिग्रस्त और नष्ट कर दिया था जो चूने के घोल से पुती थीं। यह पाया गया कि चूने के घोल में मिलाए गए ताँबे के लवण वाले यौगिकों द्वारा दीमकों को दूर रखा जा सकता था। ताँबे के घोल से नीला रंग निकलता है। ब्राह्मण वर्ग अपने घरों की पुताई ऐसे ही करते थे; हर व्यक्ति ताँबे के सल्फेट वाले चूने के घोल का इस्तेमाल करने की हैसियत नहीं रखता था।

गुलाबी शहर

जयपुर को गुलाबी शहर क्यों कहा जाता है?

राजा सवाई राम सिंह के शासन के दौरान, 1853 में, वेल्स के राजकुमार ने जयपुर का दौरा किया था। जयपुर के राजा ने राजकुमार के स्वागत में पूरे शहर की इमारतों को गुलाबी रंग से पुतवा दिया था। आज भी जयपुर की अधिकांश इमारतें गुलाबी रंग से पुती हुई हैं जिसकी वजह से इस शहर को एक खास पहचान मिलती है।

प्रवासी पक्षी

भरतपुर प्रवासी पक्षियों के लिए जाना जाता है। भरतपुर में स्थित केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान एक समय महाराजाओं के लिए बत्तखों के शिकार करने का स्थान था। ऐसा पाया गया है कि पक्षियों की 230 से अधिक प्रजातियों ने इसे अपना घर बनाया है। हर वर्ष सर्दियों के मौसम में अफगानिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, चीन और साइबेरिया से हज़ारों प्रवासी पक्षी भरतपुर आते हैं।

दुर्लभ साइबेरियाई सारस भी सर्दियों के दौरान इस अभयारण्य में प्रवास किया करते थे। वे प्रवास की सबसे लम्बी दूरी तय करते हैं, सुदूर साइबेरिया से उड़कर भारत जैसी जगहों पर। रूसी टुंड्रा के पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में इन पक्षियों के दो प्रजनन समूह रहते हैं। पूर्वी समूह के पक्षी चीन को प्रवास कर जाते हैं, जबकि पश्चिमी समूह के पक्षी अब ईराक को प्रवास कर जाते हैं, जो पहले भारत आया करते थे। आज भारत में इन पक्षियों द्वारा प्रवास करना अतीत की बात प्रतीत होती है। साइबेरियाई सारसों की आबादी में जबरदस्त गिरावट आई है। इसका एक प्रमुख कारण है लोगों द्वारा इनका शिकार किया जाना, और दूसरा है, ज़मीन के उपयोग में हुए बदलावों की वजह से कई स्थानों पर दलदली इलाकों का कम होना।

ये सारस वापस कब जाते हैं?

वे सर्दियों के बाद वापस जाते हैं।

साइबेरिया की सर्दियाँ अत्यधिक ठण्डी होती हैं, और इसीलिए ये पक्षी अपेक्षाकृत गर्म स्थानों को प्रवास कर जाते हैं।

सूफी पंथ

अजमेर में सूफी संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है। वे 1190 में भारत आए थे, और अजमेर में बस गए थे जहाँ उनके कई अनुयायी बन गए थे। वे मनुष्यों के प्रति ईश्वर के प्रेम की बात करते थे, और उन्हें गरीबों के रक्षक (गरीब नवाज) के रूप में जाना गया। 1236 ई. में उनकी मृत्यु के बाद, उनकी दरगाह एक प्रमुख तीर्थस्थल बन गई।

जन्तर मन्तर

जयपुर की जन्तर मन्तर वेधशाला भारत की पाँच वेधशालाओं में सबसे बड़ी और सबसे बेहतर रखरखाव वाली है। देश की अन्य वेधशालाएँ दिल्ली, उज्जैन, मथुरा और वाराणसी में हैं। जयपुर के राजा, जयसिंह, समरकन्द के खगोलज्ञ-सुलतान मिर्जा उलुग बेग से बहुत प्रेरित थे। जयसिंह ने बहुत विशाल खगोलीय उपकरणों के निर्माण का बन्दोबस्त किया। आज भी, इन उपकरणों का इस्तेमाल इस तरह के पूर्वानुमानों के लिए किया जाता है, कि ग्रीष्मकाल में कितनी तीव्र गर्मी पड़ेगी, मानसून कब आ सकता है, उसकी तीव्रता कैसी होगी, वह कितने समय तक चलेगा, और बाढ़ या अकाल की क्या आशंका है।

परिवहन

सड़क परिवहन

राजस्थान क्षेत्रफल के लिहाज से देश का सबसे बड़ा राज्य है, और यहाँ अनेक राष्ट्रीय राजमार्ग हैं जो विभिन्न शहरों को देश के दूसरे भागों से जोड़ते हैं। आप इनमें से अधिकांश मार्गों को दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। राष्ट्रीय राजमार्गों को 'एनएच' लिखकर निरूपित किया जाता हैः

एनएच 3 – आगरा – धौलपुर – मुम्बई

एनएच 8 – दिल्ली – जयपुर – अजमेर – उदयपुर – अहमदाबाद

एनएच 11 – आगरा – भरतपुर – जयपुर – सीकर – बीकानेर

एनएच 12 – जयपुर – टोंक – कोटा – भोपाल – जबलपुर

एनएच 14 – ब्यावर – पाली – सिरोही – कांडला

एनएच 15 – पठानकोट – गंगानगर – बीकानेर – बाड़मेर

एनएच 65 – अम्बाला – हिसार – चुरू – फतेहपुर

एनएच 76 – पिंडवाड़ा – उदयपुर – चित्तौड़ – कोटा – बारन

एनएच 79 – अजमेर – भीलवाड़ा – चित्तौड़ – नीमच

एनएच 89 – बीकानेर – नागौर – अजमेर

एनएच 90 – बारन – अलकेरा

रेलमार्ग

आप राजस्थान के प्रमुख रेलमार्गों को दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। कोटा रेलमार्ग और सड़क मार्ग का एक प्रमुख जंक्शन है।

पाकिस्तान को जाने वाली ट्रेन – दृश्यात्मक मानचित्र में, आप बाड़मेर से होकर पाकिस्तान को जाता हुआ एक रेलमार्ग देख सकते हैं। प्रारम्भ में, सिंध मेल पाकिस्तान और गुजरात के अहमदाबाद के बीच चला करती थी और राजस्थान से होकर गुजरती थी। पर 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान यह रेलमार्ग नष्ट हो गया था। इकतालीस साल बाद 2006 में फिर से इसका फिर से निर्माण किया गया। थार एक्सप्रेस जोधपुर को कराची से जोड़ती है। यह साप्ताहिक ट्रेन है जो जोधपुर रेलवे स्टेशन से 5 किमी दूर स्थित, भगत की कोठी से चलती है। रास्ते में सीमाशुल्क और वीसा की जाँच की जाती है। लेकिन यह अन्तर्राष्ट्रीय रेलमार्ग अन्य विदेशी नागरिकों के लिए सुलभ नहीं है।

वायुमार्ग

राजस्थान के प्रमुख हवाई अड्डे जयपुर, जोधपुर और उदयपुर में हैं। जयपुर में एक अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा है, जबकि अन्य हवाई अड्डे घरेलू हैं, जो भारत के विभिन्न शहरों से जुड़े हुए हैं। बीकानेर में भी एक हवाई अड्डा है। जैसलमेर में भारतीय वायु सेना का हवाई अड्डा है, जहाँ से कोई व्यावसायिक या चार्टर्ड उड़ाने नहीं भरी जातीं। कोटा में भी एक हवाई अड्डा है जहाँ से व्यावसायिक उड़ानें नहीं भरी जातीं।

शहरों में जुग्गी बस्तियाँ

शहर गाँवों से एकदम अलग दिखाई देते हैं। अगर हम शहरों के विकास के इतिहास की तुलना गाँवों के विकास से

करें तो पाएँगे कि उनके विकास में एक प्रमुख अन्तर है, उनके अलग-अलग आर्थिक आधार। गाँव खेती की बुनियाद पर विकसित हुए, और शहर गैर-कृषि उत्पादन के आधार पर विकसित हुए। इसका अर्थ, अधिकांशतः, कृषि उत्पादों के व्यापार, कच्चे माल से वस्तुओं के उत्पादन, तथा तैयार उत्पादों के व्यापार और परिवहन से था। बाद में, जब पूँजी से कारखानों का निर्माण हुआ, तो शहर कारखानों से होने वाले उत्पादन का केन्द्र बन गए। और फिर गाँव के लोग कारखानों में मजदूरों के रूप में काम करने के लिए शहरों में आने लगे। कारखानों का उत्पादन इन्हीं मजदूरों के श्रम पर आधारित था, लेकिन इनके पास कारखानों का स्वामित्व नहीं था। इन कारखानों पर अन्य वर्ग के लोगों का अधिकार था जो इस उत्पादन से मुनाफा कमाते थे। वर्गों के इस भेद ने शहरों के सामाजिक भूगोल को आकार दिया था। पर भारत में, जाति और लिंग के पहले से मौजूद विभाजनों के चलते स्थिति और जटिल हो गई थी। शहर के प्रमुख स्थलों पर साधन-सम्पन्न वर्ग के लोगों का अधिकार/स्वामित्व था। और सुविधाहीन वर्ग के लोग प्रतिकूल स्थानों और परिस्थितियों में रहते थे।

जुग्गी बस्तियाँ गरीब लोगों के रहने का स्थान हैं, जहाँ क्षमता से अधिक लोग रहते हैं और वहाँ जीने के लिए ज़रूरी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं होतीं। लोग गन्दी और असुरक्षित परिस्थितियों में रहते हैं, और आर्थिक रूप से असुरक्षित जिन्दगियाँ जीते हैं। झुग्गी बस्तियों में रह रहे लोगों के पास पानी, शौचालय और निस्तार की सही सुविधाएँ नहीं होतीं। परिणामस्वरूप उन्हें इलाज पर ज़्यादा खर्चा करना पड़ता है, बनिस्बत उन लोगों के जिनके पास ये सुविधाएँ होती हैं।

राजस्थान के 185 वैधानिक कस्बों में से 107 कस्बों में जुग्गी बस्तियाँ मौजूद हैं। कोटा देश में 1 करोड़ से ज़्यादा आबादी वाले उन प्रमुख शहरों में आता है जहाँ जुग्गी बस्तियों का अनुपात काफी अधिक है। पर चूँकि, राजस्थान सरकार इन जुग्गी बस्तियों को आधिकारिक रूप से वैध नहीं मानती, इसलिए राज्य अपने लोगों को नियमित रूप से जो सुविधाएँ प्रदान करता है, वे जुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों को नहीं मिलतीं। इनमें पीने के पानी और बिजली के कनेक्शन जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी हैं। झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग खुली जगह में शौच करने के लिए मजबूर हैं। राजस्थान की झुग्गी बस्तियों में स्थित 3,83,000 से भी अधिक घरों में से एक लाख से ज़्यादा घरों के आँगनों में शौचालय सुविधाएँ नहीं हैं। इससे उनमें रहने वाले लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं व रोजमर्रा के जीवन में असुविधाओं से जूझना पड़ता है।

इन लोगों के घरों में अक्सर महिलाएँ दूर-दराज के स्थानों से पानी लेकर आती हैं।

जल निकासी की सुविधाएँ या तो बिलकुल नहीं हैं, और अगर हैं तो बहुत घटिया स्तर की हैं। बरसात होने से इन बस्तियों में पानी भर जाता है।

ऐसी स्थिति में लोग अपने घरों में साफ-सफाई नहीं रख पाते।

झुग्गी बस्तियों में अधिकांश सड़कें कच्ची होती हैं।

सेवा द्वारा किए गए शहरी झुग्गी बस्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों में बहुतायत उन लोगों की है जो गरीबी रेखा के नीचे जीते हैं। जयपुर, जहाँ 183 झुग्गी बस्तियाँ हैं, उनमें रहने वाले लोगों में से सिर्फ एक चौथाई लोगों के पास ज़मीन थी, और जिनके पास थी भी, उनके पास ज़मीन पर अपने स्वामित्व को साबित करने के कोई कागजात या प्रमाण नहीं थे। ये लोग ऐसे इलाकों में रहते हैं जो प्रमुख सड़क मार्गों और रेल मार्गों के किनारे स्थित हैं, और जहाँ बाढ़ का खतरा बना रहता है। गरीबी में रहने वाले लोगों को अपना जीवन चलाते रहने के लिए निजी साहूकारों से कर्जा लेने को भी मजबूर होना पड़ता है, जिनकी ब्याज दरें बहुत अधिक होती हैं।

चित्रः जयपुर की एक झुग्गी बस्ती

9

राजस्थान के भीतर एकजुटता और तनाव

ऐसा प्रतीत होता है, कि बहुत व्यापक स्तर पर, भाषा, लोककथाएँ और खान-पान की आदतें किसी क्षेत्र को एक साझा रिश्ते में बाँधे रखती हैं। लेकिन नजदीक से देखने पर समझ में आता है कि उस क्षेत्र के भूगोल को अपने भीतर से ही लगातार चुनौतियाँ झेलना पड़ती हैं, और उनका समाधान भी खोजना पड़ता है। क्षेत्र के बाहर के कारकों से भी यह भूगोल प्रभावित होता है।

भूगोल निरन्तरता के माध्यम से भी आकार लेता है, और टूटन व बदलावों के माध्यम से भी। और ये टूटन या बदलाव लोगों द्वारा किए जाने वाले प्रयासों का, तथा पूँजी व लोगों के सापेक्ष राज्य की भूमिका का परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, पर्यटन की अर्थव्यवस्था का उदय, तथा राजस्थान में परमाणु बम का परीक्षण ऐसे विशिष्ट तरीके हैं जिनसे इस मरुस्थली राज्य को अनूठापन मिला है। पर साथ ही मरुस्थल के और अधिक विस्तार की तरफ ले जाने वाले पर्यावरण के निहितार्थ, सामाजिक-आर्थिक चिन्ता का कारण बन जाते हैं।

श्रम व संसाधनों के उपयोग जैसे जीवन के हर क्षेत्र में जाति, लिंग व वर्ग पर आधारित तनावों के द्वारा भी राजस्थान का भूगोल निरन्तर पुनर्निमित होता रहता है। इन तनावों के रोजमर्रा के जीवन से जुड़े निहितार्थ होते हैं, जो भौतिक व सामाजिक, दोनों प्रकार के होते हैं।

राजस्थान, जिसे 1950 में राज्य बनाया गया, का क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किमी है। क्षेत्रफल के लिहाज से यह भारत का सबसे बड़ा राज्य है और इसमें 33 ज़िले हैं।

राजस्थान के बारे में कुछ जानकारी

राजस्थान क्षेत्रफल के लिहाज से भारत का सबसे बड़ा राज्य है, फिर भी यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं है। भारत के अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ जनसंख्या घनत्व काफी कम है। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसा क्यों है?

इस हकीकत के बावजूद भी, क्या आपको यह पता है कि थार मरुस्थल दुनिया का सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला मरुस्थल है? इसका कारण क्या हो सकता है?

राजस्थान 2011

जनसंख्या – 6.86 करोड़

जनसंख्या घनत्व – 201 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी

लिंग अनुपात – 926 महिलाएँ प्रति हजार पुरुष

साक्षरता 67 प्रतिशत

(महिला साक्षरता 52.7 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता 80.5 प्रतिशत)

दलित और आदिवासी लोग मिलकर राजस्थान की कुल जनसंख्या का 92 प्रतिशत हो जाते हैं (दलित 70 प्रतिशत और आदिवासी 12 प्रतिशत)। यहाँ के लोग विभिन्न धार्मिक मतों को मानते हैं, जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम, सिक्ख धर्म, और जैन धर्म। आदिवासी लोगों के धार्मिक रीति-रिवाज अधिकांशतः प्रकृति की पूजा पर आधारित हैं। पर कुछ मामलों में, अन्य लोगों के सम्पर्क में आने से, उनके साथ मेलजोल बढ़ने से आदिवासी लोगों के इन रीति रिवाजों में बदलाव आया है। उदाहरण के लिए, सहरिया समुदाय ने अधिकांशतः, हिन्दू धर्म को अपना लिया है, और मियो समुदाय ने मुसलिम धर्म को।

लोकमानस में किसी क्षेत्र को, उसकी एकजुटता तथा साझा सांस्कृतिक प्रक्रियाओं और प्रतीकों के आधार पर पहचाना जाता है। भारतीय राज्यों का, मोटे तौर पर भाषा के आधार पर हुआ गठन, कुछ हद तक, एक साझा विशेषता को रेखांकित

करता है। लेकिन प्रत्येक क्षेत्र या प्रत्येक राज्य के भीतर भी हम ऐसी चुनौतियों को देख सकते हैं जो विशिष्ट भौगोलिक विकास प्रक्रियाओं से, तथा इनके फलस्वरूप पैदा होने वाली सामाजिक और स्थानिक प्रक्रियाओं से उभरने वाले तनावों से निकली हैं।

साझा विशेषता के सूत्र

कई सामाजिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाज राजस्थान को एक भौगोलिक सत्ता का रूप देते हैं। बोली जाने वाली भाषाएँ, खाना बनाने की पद्धतियाँ, तथा कहानियों, कविताओं तथा लोककथाओं जैसी अन्य परम्पराएँ साझा विशेषता के सूत्र बुनती हैं।

भाषाएँ

राजस्थान में भले ही हिन्दी आधिकारिक भाषा है, लेकिन राज्य के विभिन्न भागों में मेवाती, मेवाड़ी, हदौती, मारवाड़ी जैसी अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, और इन भाषाओं को संयुक्त रूप से राजस्थानी कहा जाता है। ये भाषाएँ राजस्थान में, भारत के ही अन्य पड़ोसी राज्यों में, तथा पड़ोसी देश पाकिस्तान में लाखों लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

चित्रः राजस्थान – भाषाएँ

मेवाती

मेवाड़ी

भीली

डूंगरी गरसिया

मारवाड़ी

धून्धारी

बागड़ी

शेखावाटी

हदौती

वागड़ी

मालवी

टिप्पणीः मारवाड़ी बोलने वाले लोगों की संख्या 1 करोड़ 30 लाख है, और इनमें पाकिस्तान में रहने वाले लोग भी शामिल हैं। जुन्धारी बोलने वाले लोगों की संख्या 90 लाख है, तथा मेवाती (हरियाणा के लोगों को मिलाकर), मेवाड़ी तथा बागड़ी (पंजाब, हरियाणा और पाकिस्तान के लोगों को मिलाकर) बोलने वाले लोगों की संख्या 50-50 लाख है। अन्य भाषाएँ अपेक्षाकृत कम लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भिक राजस्थानी और गुजराती भाषाएँ करीब 1450 ईसवीं तक बिलकुल एक सी रही होंगी। मारवाड़ी प्राचीन गुजराती से निकली थी जो गुजरात और राजस्थान में मूलतः गुर्जरों द्वारा बोली जाती थी।

राजस्थान के जनजातीय समुदायों द्वारा भीली और डूंगरी गरासिया जैसे कई भाषाएँ बोली जाती हैं। भीली, भील समुदाय की भाषा है। डूंगरी गरासिया, जो गरासिया समुदाय द्वारा बोली जाती है, भीली, मारवाड़ी और गुजराती भाषाओं से मिलकर बनी है।

उत्तरी राजस्थान की तरफ, पंजाब से सटे गंगानगर में पंजाबी बोली जाती है। यहाँ बोली जाने वाली बागड़ी, जो कि राजस्थानी की एक बोली है, तथा सरायकी, का पंजाबी के साथ गहरा नाता है। राजस्थान में बहुत से लोगों द्वारा सिंधी

भाषा भी बोली जाती है।

लोककथा

हर जगह की अपनी लोककथाएँ होती हैं जो किंवदंतियों, कहानियों, संगीत, मौखिक इतिहास, लोकप्रिय मान्यताओं और किस्सों से बनती हैं। राजस्थान की लोकप्रिय लोककथाओं में से एक है ढोला और मारू की कहानी। मारू एक राजुकमारी थी, और ढोला एक राजकुमार। उनके बचपन में, उनकी शादी एक दूसरे के साथ कर दी गई थी। लेकिन फिर ढोला की पिता की मौत हो गई और इस शादी के बारे में सब लोग भूल गए। बाद में ढोला की शादी मालवनी के साथ हो गई। मारू ने ढोला को कई संदेश भेजे, लेकिन मालवनी ने उन सन्देशों को ढोला तक नहीं पहुँचने दिया।

फिर एक बार, मारू के राज्य से लोकगायकों का एक समूह ढोला के राज्य में आया, और उनसे ढोला को मारू के ठिकाने के बारे में पता चला। कई कठिनाइयों के बावजूद, मारू और ढोला एक दूसरे से मिले। पर दुर्भाग्य से, मारू को साँप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। ढोला इस सदमे को बर्दाश्त न कर सका, और उसने खुद को मारने की कोशिश की। पर एक योगी और योगिनी ने उसे मरने से बचाया, और यह भी कहा कि वे मारू को फिर से जीवित कर सकते थे। उन लोगों ने अपने वाद्य बजाना शुरू किए और मारू फिर से जीवित हो उठी!

इस कहानी में उमर सुमारा नाम का एक व्यक्ति भी था जो मारू से शादी करना चाहता था। उसने ढोला को मारने की कोशिश की। लेकिन मारू और ढोला अपने चमत्कारी उड़ने वाले ऊँट पर बैठकर उमर से बचकर निकल गए। मालवनी के साथ मिलकर ढोला और मारू ने अपना जीवन खुशी-खुशी बिताया।

चित्रः ढोला और मारू का चित्र

खान-पान

हर क्षेत्र में खाना बनाने के तरीकों पर वहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियों का, और समय के साथ होने वाले सांस्कृतिक बदलावों का प्रभाव पड़ता है। जिन स्थानों पर पानी की कमी है, जैसे जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर, वहाँ इसे खाना पकाने में कम इस्तेमाल किया जाता है, और इसकी जगह दूध, मही और घी का इस्तेमाल ज़्यादा किया जाता है। सांगरी और केर जैसे पौधों की फल्लियाँ और सूखी मसूर का खूब इस्तेमाल किया जाता है। अधिकांश पारम्परिक राजस्थानी खानों को कई दिनों तक रखा जा सकता है, और बिना गरम किए खाया जा सकता है। बाजरा और मक्के का इस्तेमाल राजस्थान भर में रोटी, खीची और रबड़ी बनाने के लिए किया जाता है जो यहाँ के लोगों का मुख्य आहार है।

दाल-बाटी-चूरमा एक बेहद लोकप्रिय राजस्थानी व्यंजन है। गेहूँ के आटे से बनी बाटी को कण्डे पर पकाया जाता है, और फिर घी डालकर इसे खाया जाता है। कण्डे गाय के गोबर को सुखाकर बनाए जाते हैं, और यह बहुमूल्य ईंधन बन जाते हैं। जब ये कण्डे खूब गर्म होकर लाल सुर्ख हो जाते हैं तब इनसे जो गर्मी निकलती है उस पर बाटी सेंकी जाती है।

सफेद मांस ऐसा पकवान है, जिसके बारे में माना जाता है कि यह मूलतः जयपुर के कच्चवाहा परिवार में बनाया गया था। इसे बकरे के सफेद गोश्त से तैयार किया जाता है, और इसमें अच्छी खासी मात्रा में काजू, बादाम, ताजे नारियल की गिरी के पेस्ट, सफेद मिर्च और खसखस के दानों का प्रयोग किया जाता है। गोश्त को ककड़ी परिवार के एक फल, कचरी, के साथ नमक, मसाला लगाकर बनाया जाता है। चने के आटे के साथ कई पकवान बनाए जाते हैं। पापड़ और चटनियाँ भी खूब बनाए जाते हैं। राजस्थान में चूरमा, हलवा, गुजिया, बालूशाही, अलवर का मावा, फीनी, घेवर, दिलकुशाल जैसे बहुत सारे मिष्ठान भी बनाए जाते हैं।

पर्यटन

राजस्थान की ऐसी कई विशेषताएँ हैं जो उसके विशिष्ट भूगोल को चिह्नित करती हैं। यह विशिष्टता सिर्फ मरुस्थल जैसी विशेषताओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका विस्तार उन सामाजिक व सांस्कृतिक भूगोलों तक है जो मानव समाज और प्राकृतिक परिवेश के बीच हुए ऐतिहासिक क्रियाकलापों का परिणाम हैं। इन प्रक्रियाओं ने एक साथ राजस्थान

के समाज को – उसके सामाजिक ढाँचों को और सामाजिक सम्बन्धों को - निर्मित किया है। राजस्थान में, एक अपेक्षाकृत नई अर्थव्यवस्था के रूप में, पर्यटन को, बहुत हद तक इस भूगोल से लाभ मिलता है। उत्पादन के अन्य क्षेत्रों के विपरीत पर्यटन में न तो कच्चा माल पैदा किया जाता है और ना ही तैयार माल। इसके बजाय पर्यटन में दूसरे स्थानों से आए लोग किसी स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य या ऐतिहासिक स्मारकों का भ्रमण करते हैं और इस अनुभव के लिए वे उसकी कीमत देते हैं।

राजस्थान में पर्यटन को इस आधार पर विकसित किया गया है कि कई खास पहलू राजस्थान को अन्य स्थानों से भिन्न बनाते हैं। मरुस्थल एक बिलकुल ही अलग दिखाई देने वाली भूमि है। राज्य में बड़ी संख्या में राजमहलों का होना भी पर्यटकों को आकर्षित करता है। कठपुतलियों के खेल और प्रदर्शन कलाओं जैसे विभिन्न पारम्परिक कला स्वरूप भी पर्यटन के मुताबिक ढल गए हैं। राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव अभयारण्य, खास तौर से रणथम्भोर और केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान प्रमुख पर्यटन स्थल बन गए हैं।

जोधपुर, जैसलमेर और बीकानरे के चारों ओर फैले मरुस्थल को प्रमुख पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकसित किया गया है। पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कई पुराने राजमहलों और हवेलियों (धनी लोगों के मकान) को होटलों में परिवर्तित कर दिया गया है। रेत के टीलों और मरुउद्यानों को भी देखने के लिए लोग ऊँट या जीप पर सवार होकर जाते हैं। इस तरह की सैर को सफारी कहा जाता है। इसके लिए ऊँट पर बैठकर सामान्य ढंग से सैर की जा सकती है, या खर्चीली सैर भी की जा सकती हैं जहाँ पर्यटक-शिविर बनाए जाते हैं और दावतों का आयोजन होता है तथा सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं।

मरुउद्यान क्या होता है?

यह मरुस्थल में एक ऐसा छोटा सा क्षेत्र होता है जहाँ पानी की आपूर्ति बनी रहती है, और इसलिए वहाँ थोड़े पेड़-पौधे उग सकते हैं।

तो क्या ऐसे स्थानों पर ज़मीन की सतह के पास भूजल मिलता है?

हाँ।

मरुउद्यान बाकी के मरुस्थल से अलग होता है, जहाँ पेड़-पौधे बहुत ही दुर्लभ होते हैं, और बड़ी संख्या में रेत के टीले या चट्टानें दिखाई देती हैं।

ओरणों को ऐसी ही जगहों पर विकसित किया गया था।

चित्रः शीत ऋतु में पुष्कर और नागौर के आसपास विशेष सफारियों का आयोजन किया जाता है, क्योंकि इसी समय इन स्थानों पर पशु मेले लगते हैं।

राजपूताना, गुजरात और हैदराबाद के शासक, तथा भारत के वाइसरॉय राजसी रेल-डब्बों का इस्तेमाल किया करते थे, जिनका उपयोग भारत की स्वतंत्रता के बाद बन्द हो गया था। अत्यधिक साज-सज्जित इन रेल-डब्बों को भारतीय रेलवे ने 1991 में भाप के इंजन वाली लग्ज़री (वैभवपूर्ण) रेलगाड़ी के रूप में विकसित किया। इस तरह इन राजसी डब्बों को पर्यटन के माध्यम से एक नया जीवन मिल गया। मीटर गेज पर चलने वाली इस रेलगाड़ी को "पैलेस ऑन व्हील्स" कहा जाता है। यह आठ दिन की यात्रा में दिल्ली से चलकर राजस्थान तक जाती है, और बीच में आगरा, भरतपुर, सवाई माधोपुर, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर और जयपुर में रूकती है। इस ट्रेन में रसोई यान, मंहगे रेस्तरां, बार (मदिरालय), विश्राम कक्ष और सेवा डब्बे (सर्विस कार) हैं।

माउंट आबू, जो राजस्थान का एकमात्र हिल स्टेशन (पहाड़ी पर्यटन स्थल) है, एक प्रमुख पर्यटन स्थान है। आप इसे अपने दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि माउंट आबू गुर्जरों या गूजरों का मूल निवास स्थान रहा होगा। यह एक जैन तीर्थ स्थान भी है, और सफेद संगमरमर से उकेरे गए दिलवाड़ा मन्दिर समूह के लिए जाना जाता है।

पर्यटन के विकास ने हस्तकला उद्योग को कई तरीकों से बढ़ावा दिया है। इन पारम्परिक कलाओं का ह्रास हो गया था क्योंकि बाज़ार में उनकी जगह आधुनिक उत्पादनों ने ले ली थी। पर पर्यटकों को इन उत्पादों का बहुत आकर्षण होता है क्योंकि उनके लिए ये वस्तुएँ नई और अनजानी होती हैं।

जातीय पर्यटन क्या होता है?

शब्दकोष के अनुसार "जातीय" का अर्थ होता है साझा और विशिष्ट भाषाई, नस्लीय, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय या धार्मिक विरासत वाले लोगों के किसी समूह की विशेषता।

अन्य क्षेत्रों के लोगों को राजस्थानी समाज बहुत अलग और रोचक प्रतीत होगा।

यह सम्भवतः एक ऐसा आधार बन जाता है जिसके इर्द-गिर्द जातीय पर्यटन को बढ़ावा दिया जाता है।

पर्यटकों के लिए तैयार की जाने वाली विवरणिकाओं में ग्रामीण राजस्थान की जीवनशैली, उनके पारम्परिक घरों, उनके भोजन तथा रंग-बिरंगी पोशाकों का वर्णन किया जाता है। गाँवों में पक्के मकान भी हैं जो आम तौर पर ज़मींदार परिवारों के होते हैं। इन मकानों में आँगन होते हैं, और पशुओं के लिए विशाल बाड़े होते हैं। ये मकान धूप में पकाई गई मिट्टी की ईंटों से बनाए जाते हैं, और फिर इन पर चूने का पलस्तर किया जाता है। घर के प्रवेश द्वार पर सजावट की जाती है जिसमें चमकीले रंगों का प्रयोग किया जाता है। पर्यटन विभाग द्वारा गाँवों में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कई गाँवों को चिह्नित किया जाता है। पर्यटक, गाँव के किसी परिवार के अतिथियों के रूप में रह सकते हैं, और उनके रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का अनुभव ले सकते हैं।

राजस्थान के लोग पर्यटन के बारे में क्या कहते हैं?

मरुस्थलीय पर्यटन राजस्थान में पिछले चार दशकों में ही पनपा है। वहाँ के लोगों में इसे लेकर किस प्रकार की चर्चाएँ होती हैं, उनके नमूने पढ़िएः

पर्यटन के माध्यम से राज्य में काफी पैसा आ रहा है।

और बाज़ारों में पहले से कहीं अधिक उत्पाद दिखाई देते हैं।

अपने यहाँ पानी की हमेशा से कमी रही है – लेकिन अब तो गाँवों तक में बोतलबन्द पानी खूब मिलता है।

लेकिन कुछ पर्यटक बहुत कम कपड़े पहनते हैं।

और वे हमारे यहाँ की महिलाओं की तस्वीरें लेते हैं।

वे लोग हमारे बच्चों को पैसे भी देते हैं।

और बच्चे यह सोचना शुरू कर देते हैं कि इन लोगों को क्या-क्या चीज़ें बेची जा सकती हैं।

लेकिन पुष्कर का, और झील का प्राकृतिक वातावरण बिगड़ गया है।

पर्यटकों के लिए ज़रूरत से ज़्यादा ही सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।

और आसपास के इलाकों के जंगल काट दिए गए हैं।

और पर्यटकों के बीच में इस प्रकार की चर्चाएँ होती हैंः

होटल मालिक और रिक्शा वाले हम लोगों से सामान्य से ज़्यादा किराया वसूल करते हैं।

पर हमें गाँव के लोग बहुत अच्छे लगते हैं।

मरुस्थल का उत्सव स्वाभाविक नहीं लगा।

ऐसा लगा जैसे उन्होंने सिर्फ हमें बेचने के लिए अस्वाभाविक ढंग से चीज़ों को बनाया था।

हम तो मौलिक नृत्यों और रीति-रिवाजों को देखना चाहते हैं।

मरुस्थल उत्सव एक मेला है जो पर्यटकों के लिए, जैसलमेर में 1978 से आयोजित किया जाता रहा है। यह मुख्यतः एक व्यावसायिक कार्यक्रम है। ऐसी भी खबरें हैं कि पर्यटन ने राजस्थान के संगीत से जुड़े पारम्परिक रिवाजों तक में परिवर्तन कर दिया है। भड़कीले संगीत प्रदर्शनों के लिए कई पारम्परिक वाद्यों को त्याग दिया गया है। पहले संगीत कार्यक्रमों में बच्चों की भूमिका गौण हुआ करती थी। लेकिन अब वे ऐसी प्रस्तुतियाँ देते हैं जिन्हें पर्यटक 'क्यूट (आकर्षक)' कहते हैं और तालियाँ बजाते हैं। यह कृष्ण मेनन द्वारा 1993 में किए गए एक अध्ययन में उद्धृत है। उन्होंने ऐसी कई समस्याओं का जिक्र किया है जो राजस्थान में पर्यटन के विकास से पैदा हुई हैं:

1. कई ऐतिहासिक स्मारकों को पर्यटकों की ज़रूरतों के लिए उनके निवास स्थानों और रेस्तराओं में परिवर्तित कर दिया गया है।

2. एक ओर, जहाँ पर्यटन के लिए राज्य के आधारभूत ढाँचे को सुधारने हेतु बहुत सारा निवेश किया जाता है, वहीं दूसरी ओर उस क्षेत्र का सामाजिक और आर्थिक विकास की उपेक्षा की जाती है।

3. प्लास्टिक के कूड़े और अन्य अपशिष्ट पदार्थों से होने वाले प्रदूषण से, तथा जानवरों के अवैध शिकार से मरुस्थल के पारिस्थितिक तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मरुस्थलीकरण और नवीनीकरण

मरुस्थलीकरण कृषि योग्य तथा निवास योग्य भूमि का मरुस्थलों में रूपान्तरण है जो स्वाभाविक रूप से जलवायु में परिवर्तन के कारण, या ज़मीन के विनाशकारी उपयोग जैसे मानवीय कार्यों की वजह से होता है। इनसे भू-दृश्य में हो रहे परिवर्तनों के साथ ही साथ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में हो रहे परिवर्तन भी जाहिर होते हैं। अहमदाबाद के अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र की रिपोर्ट है कि 66 प्रतिशत राजस्थान में मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। मरुस्थलीकरण कई कारणों से होता दिखाई दे रहा है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1. **खनन –** इसकी वजह से वन क्षेत्रों का सफाया हो जाता है, और इसके कारण हवा और पानी मिट्टी को बहा ले जाते हैं। अरावली पर्वत ृंखला में, जहाँ राज्य की अधिकांश खदानें स्थित हैं, वनों की कटाई होने से मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

2. **शहरों में ज़मीन का उपयोग** – औद्योगिक अपशिष्ट, प्रदूषण और पानी की निकासी के मार्गों पर इमारतों और सड़कों के निर्माण से पानी का स्वाभाविक प्रवाह बाधित हो जाता है।

3. **भूजल में कमी हो जाना** – भूजल को इतनी मात्रा में खींच लिया जाता है, जो प्रकृति द्वारा उसकी भरपाई करने की दर से कहीं अधिक होती है। इससे भी वनों और कृषि भूमियों का मरुस्थलीकरण होता है।

4. **जलभराव** – अन्य चीजों के साथ ही इंदिरा गाँधी नहर को भी मरुस्थलीकरण को नियंत्रित करने के लिए बनाया गया था।

पर इससे जलभराव की समस्या पैदा होने लगी।

जब खारा पानी सतह पर आ जाता है, तो वहाँ पौधे नहीं बढ़ सकते।

और इससे मरुस्थलीकरण होता है।

राजस्थान में, पारम्परिक रूप से ऐसे कई कार्य किए जाते रहे हैं जिनसे मरुस्थल के पर्यावरण को संरक्षण मिलता था। और आज के समय में मरुस्थलीकरण के बढ़ने के कारण ज़रूरी हो गया है कि हम इन पारम्परिक उपायों से उपयोगी ज्ञान हासिल करें।

गोडावण

मरुस्थलीकरण को नियंत्रित करने के लिए 1952 में, जोधपुर में, मरुस्थल वनरोपण अनुसन्धान स्टेशन बनाया गया था। पेड़ लगाने के लिए, और रेत के टीलों को सुदृढ़ करने के लिए प्रयास किए गए। गाँवों में जलाऊ लकड़ी और चारे की खेती की गई। सेना ने भी इसके लिए बहुत योगदान किया। पेड़ों की कई विदेशी प्रजातियाँ लगाई गईं जैसे इजरायल से लाया गया अकेशिया टॉर्टिलिस, जिसने ईंधन और चारे, दोनों की आपूर्ति की। पर लोग खुश नहीं थे क्योंकि वे अकेशिया सेनेगल लगाना चाहते थे। यह पेड़ न सिर्फ चारा और ईंधन देता था, बल्कि लोगों को कीमती गोंद की राल भी देता था। इसके अलावा, थार मरुस्थल का प्रसिद्ध भारतीय पक्षी, गोडावण, अकेशिया सेनेगल पर रहने वाले कीड़ों को खाता है।

अपने दृश्यात्मक मानचित्र में आप ग्रेट इंडियन बस्टर्ड को देख सकते हैं जिसे राजस्थान में गोडावण कहते हैं। आज गोडावण की संख्या में तेजी से गिरावट हो रही है। अतीत में, गोश्त के लिए और क्रीड़ा के लिए उनका खूब जमकर शिकार किया गया। आज भले ही वन्यजीवों के शिकार के खिलाफ कानून बन गए हैं, कुछ लोग अभी भी इन पक्षियों का शिकार करते हैं। इस गैर-कानूनी काम को अवैध शिकार कहा जाता है।

गोडावण सूखी वनस्पति पसन्द करता है, क्योंकि ये उसकी आँख के तल से नीचे ही रहती है, और उसकी उड़ान के बीच में नहीं आती। पर इंदिरा गाँधी नहर के बनने से कृषि में हुए विस्तार ने इस स्थिति को बदल दिया है। इस पक्षी के आवासीय परिवेश में हुए परिवर्तन के कारण इस क्षेत्र से गोडावण का लोप हो गया है। यह पक्षी आज ज़्यादातर जैसलमेर के आसपास दिखाई देता है। भले ही गोडावण ने 5 करोड़ साल से अपने अस्तित्व को बचाए रखा है, पर आज भारत में उसकी संख्या 500 से भी कम रह गई है।

अपने दृश्यात्मक मानचित्र में पश्चिमी राजस्थान के कुछ पक्षियों और पशुओं को ढूँढो।

मरुस्थली लोगों के जीवन के पारम्परिक तरीके मरुस्थल के पर्यावरण के अनुरूप विकसित हुए थे।

हाँ, जैसे कुई और कुण्ड जैसी पानी की पारम्परिक व्यवस्थाएँ।

हाँ ये व्यवस्थाएँ मरुस्थल के बारे में यहाँ के लोगों की सही समझ को दर्शाती हैं।

बिश्नोई समुदाय

बिश्नोई समुदाय पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए जाना जाता है। करीब दो सदियाँ पहले, जोधपुर के राजा को अपना महल बनाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने अपने सिपाहियों को पेड़ों को काटने के लिए भेजा। पर बिश्नोई समुदाय के लोगों ने राजा के सिपाहियों का विरोध किया। पेड़ों को बचाते हुए बिश्नोई समुदाय के कई लोगों ने अपनी जानें गँवा दीं। आज भी बिश्नोई समुदाय के लोग इस घटना की स्मृति में, और अपनी श्रृद्धा व धर्म की रक्षा करने के लिए हर साल इकट्ठा होते हैं।

बिश्नोई समुदाय की स्थापना बीकानेर के गुरु जम्बेश्वर जी ने की थी, जिनका जन्म 1451 ईसवीं में हुआ था। वे अपने अनुयायियों के लिए एक धर्मग्रंथ छोड़ गए थे, जिसमें अन्य बातों के अलावा, पर्यावरण के संरक्षण की बात कही गई थी। उन क्षेत्रों में जहाँ बिश्नोई समाज के लोग रहते हैं, वहाँ काले मृग और हिरणों को इन लोगों के खेतों में चरते हुए देखा जा सकता है।

ऊँट

ओरणों और गोचरों से न सिर्फ ऊँटों व अन्य जानवरों को भोजन मिलता था, बल्कि इनसे लोगों की फलों, शहद और रेशों की ज़रूरतें भी पूरी होती थीं। इनसे सूखे मौसम में मरुस्थल के जीवन का सन्तुलन बनाए रखने में भी मदद मिलती थी। लेकिन 1952 में, भूमि बन्दोबस्त कानून के माध्यम से राजस्थान के अधिकांश ओरणों को आरक्षित या राजस्व वनों में तब्दील कर दिया गया था। रायका समुदाय का जीवन भी इन वनों पर निर्भर रहते आए थे, जिन्हें वे न सिर्फ संरक्षित करते थे, बल्कि जंगल की आग को नियंत्रित करके उन्हें बचाते भी थे। इस कानून के बनने के बाद रायका समुदाय के इन लोगों को ओरणों से बाहर रखा जाने लगा। रायका समुदाय पारम्परिक रूप से ऊँट पालक समुदाय है। चारागाहों के लुप्त होने से, और पर्याप्त भोजन न मिल पाने की वजह से ऊँटों की आबादी घट गई है। इसके अलावा, मोटर वाहनों के

आने से यातायात के लिए ऊँट पर निर्भरता भी कम हो गई है।

रायका लोग जंगलों को और घास के मैदानों को ओरणों व गोचरों के माध्यम से भी बचाते थे।

पारिस्थितिकी विज्ञानी कहते हैं ऊँटों की चराई से मरुस्थल की वनस्पति को बहुत मामूली नुकसान होता है, और इसलिए ऊँटों का मरुस्थलीकरण में कोई योगदान नहीं है। ऊँट आम तौर पर वनस्पति के एक या दो कौर खाते हैं, और फिर आगे बढ़ जाते हैं। उनकी फितरत बकरियों से बहुत अलग होती है जो चराई के एक मौसम में बहुत अधिक पत्तियाँ या घास खा जाती हैं। इसलिए ऊँट पालना राजस्थान में मरुस्थलीकरण को कम करने के तरीकों में से एक माना जा सकता है। ऊँटों को बचाने वाली एक परियोजना के सदस्य, ऑइल कोल्हर रॉल्फसन कहते हैं, "यूरोप के उदाहरण से हम यह जानते हैं कि चराई रुकने से भूदृश्य बदल जाते हैं। जर्मनी में, सरकार, लोगों को बकरियों, भेड़ों या गाय-बैलों को ऐसे कुछ खास इलाकों में चराने के लिए पैसा देती है, जहाँ जैव विविधता को वापस लाना है"। खास तौर से राजस्थान के सन्दर्भ में, वे कहते हैं, "उदाहरण के लिए, कुम्बलगढ़ राष्ट्रीय उद्यान में चराई के अधिकार फिर से देने से न सिर्फ पर्यावरण का लाभ होगा, बल्कि इससे रायका और अन्य चरवाहा समुदायों की खाद्य सुरक्षा और आजीविकाओं का भी बन्दोबस्त हो जाएगा।"

चित्रः राजस्थान के शहरों में ऊँट गाड़ियों को खूब देखा जा सकता है। इन गाड़ियों में हवाई जहाजों के, बेकार मानकर त्याग दिए गए, पहियों का इस्तेमाल किया जाता है।

चित्रः जैसलमेरी ऊँटों की टाँगे लम्बी होती हैं, और वे एक घण्टे में 22 किमी तक का सफर तय कर सकते हैं।

चित्रः बीकानेरी ऊँटों के कानों में बाल होते हैं, और इनमें अच्छी-खासी ताकत होती है। ये अपनी पीठ पर बहुत सारा बोझा ढो सकते हैं।

सेवन घास

आप दृश्यात्मक मानचित्र में देख सकते हैं कि पश्चिमी राजस्थान में सेवन घास खूब पैदा होती है। यह सदाबहार घास है और बीस सालों तक जिन्दा रह सकती है। मरुस्थल के कई इलाके अत्यधिक लवणयुक्त हैं, और इसलिए वहाँ घास और झाड़ियाँ पैदा नहीं होतीं। पर घास की कुछ किसमें लवरण रोधी होती हैं – और वे लवणयुक्त भूमि में भी उग सकती हैं। सेवन घास ऐसी ही एक घास है, और इसे राजस्थान में अद्‌भुत घास माना जाता है। यह पशुओं को खिलाने के काम आती है। इसे काटकर इसका संग्रह कर लिया जाता है, और फिर इसका उपयोग सूखे मौसम में तथा सूखा पड़ने के वक्त किया जाता है। अगले दस सालों तक के लिए इसका संग्रह किया जा सकता है।

सेवन जैसी घास रेत को बाँधकर रखने में मदद करती है, और उसे उड़ने से रोकती है। इस प्रकार सेवन घास उगाना रेत के टीलों को स्थिरता देने का, तथा मरुस्थलीकरण को रोकने का एक अच्छा तरीका हो जाता है।

परमाणु बम तथा आणविक शक्ति

भारत सरकार ने पहले 1974 में, फिर दोबारा 1998 में, जैसलमेर ज़िले में पोखरण के निकट थार मरुस्थल के एक भाग को परमाणु परीक्षण करने के लिए चुना था। यहाँ की विरल आबादी और अल्प खेती, ऐसे विध्वंसकारी परीक्षणों के लिए इस क्षेत्र को चुनने के पीछे प्रमुख कारण थे।

क्या तुम्हें मैडम द्वारा हिरोशिमा दिवस पर कही बातें याद हैं?

हाँ, उन्होंने हमें इंडोनेशिया के टंबोरा ज्वालामुखी के बारे में बताया था।

यह पिछले 500 सालों का सबसे बड़ा विस्फोट था।

यह ज्वालामुखी कब फटा था?

सन् 1815 में। इसके बहुत प्रबल और व्यापक प्रभाव हुए थे।

जैसे?

इसके अगले साल यूरोप में फसल बर्बाद हो गई थी, तथा अकाल पड़ा था क्योंकि गर्मियों के महीनों में ठण्ड पड़ गई थी।

इसी तरह अगर परमाणु युद्ध हुआ तो उसके प्रभाव भी भयावह होंगे!

यही तो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान में हुआ था।

हाँ, नागासाकी और हिरोशिमा में। वहाँ परमाणु बम गिराए गए थे!

देखा न, विध्वंस या विनाश करने का इरादा न होने पर भी, 2011 में जापान के फुकोशीमा में क्या हुआ था।

फुकोशीमा में एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र है।

सुनामी के कारण इस संयंत्र में टूट-फूट हुई, जिससे रेडियोधर्मी रिसाव हुआ जो बहुत दूर के स्थानों तक फैल गया था।

राजस्थान में, कोटा शहर से 65 किमी की दूरी पर रावतभाटा में, एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र स्थित है। जून 2012 में, वैल्एिँग प्रक्रिया में कुछ गड़बड़ी हो जाने पर इस संयंत्र के सुरक्षित वातावरण के भीतर काम कर रहे 38 कर्मचारी ट्रिशियम के सम्पर्क में आ गए थे।

चित्रः रावतभाटा परमाण ऊर्जा संयंत्र

जाति, लिंग और गरीबी का भूगोल

राजस्थान का सामाजिक भूगोल समय के साथ बदला है, और कुछ बदलाव स्वतंत्र भारत में बनाए गए कानूनों के माध्यम से हुए हैं। इन कानूनों में, औपनिवेशिक ब्रिटिश प्रशासन द्वारा जनजातीय समुदायों को आपराधिक करार देने वाली अधिसूचना में से इन समुदायों का नाम हटाने, बँधुआ मजदूरी पर प्रतिबन्ध लगाने, और राजस्थान के कुछ इलाकों में खनन पर प्रतिबन्ध लगाने जैसे कुछ कानून शामिल थे। इन मुद्दों के बारे में आप पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं। ऐसे बहुत से अन्य मुद्दे हैं जिनके बारे में नीचे चर्चा की जाएगी। यह देखा जा सकता है कि जहाँ बदलावों की माँग करने के लिए लोगों ने एकजुट होकर आवाज़ उठाई है, वहाँ सरकार पर नए कानून बनाने के लिए दबाव पड़ा है। लेकिन अक्सर यह होता है कि समाज के सत्ता के ढाँचों में पुराने तरीकों से ही चलते रहने की प्रवृत्ति होती है, या तो इसलिए क्योंकि इन तरीकों को ऐसी परम्पराओं के रूप में देखा जाता है जिनमें बदलाव नहीं किया जाना चाहिए, या फिर इसलिए क्योंकि कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं को जारी रखने से समाज के कुछ तबकों को लाभ होता है। इससे समाज विभिन्न दिशाओं में खिंचता रहता है।

इंडिया अनहर्ड, अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया संगठन, वीडियो वालन्टीयर्स, द्वारा शुरू की गई दुनिया की पहली सामुदायिक समाचार सेवा है। यह लोगों को प्रोत्साहित करती है कि वे उनकी जिन्दगियों को प्रभावित करने वाले वास्तविक मुद्दों से सम्बन्धित परिवर्तन ला सकें। राजस्थान की सुनीता कसेरा इंडिया अनहर्ड में ब्यौरा देती हैं, कि किस तरह आज भी राजस्थान में छुआछूत का चलन जारी है। वे बताती हैं, कि किस तरह ऊँची जाति के लोगों के घरों के सामने से गुजरने पर आज भी दलित महिलाओं को अपनी चप्पलें उतारकर हाथ में लेना पड़ती हैं।

अगर आज ऐसा नहीं करतीं, तो क्या होता है?

वे लोग हमारे पतियों को प्रताड़ित करते हैं।

और वे हम पर चिल्लातें हैं, और ताने देते हैं कि हम लोग ऊँची जाति के लोगों का सम्मान नहीं करते।

वे हमें ऐसे बर्तनों में खाना और पानी देते हैं जिनमें वे खुद कभी नहीं खाते-पीते।

भारतीय संविधान यह कहता है कि जातीय भेदभाव गैर-कानूनी है।

पर हम तो इस भेदभाव को हर समय झेलते हैं।

आपने इस अध्याय की शुरूआत में देखा था कि वर्ष 2011 में राजस्थान का लिंग अनुपात 926 था। इसका अर्थ यह हुआ कि राजस्थान में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या सिर्फ 926 है। यह पूरे भारतवर्ष के लिंग अनुपात, 940, से भी कम है। अगर आप राजस्थान के 0 से 6 वर्ष की उम्र के बच्चों की जानकारियों पर नजर डालेंगे तो पाएँगे कि 1991 में प्रति 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या 916 थी। वर्ष 2001 में यह संख्या घटकर 909 हो गई थी, और इसके बाद वर्ष 2011 में यह संख्या घटकर 883 हो गई है।

क्या इसका अर्थ यह है कि राजस्थान में अपेक्षाकृत कम लड़कियाँ पैदा होती हैं?

नहीं, ऐसा कतई नहीं है! कई नवजात बच्चियों को मां-बाप छोड़ देते हैं। और फिर वे मर जाती हैं।

मैंने अखबार में पढ़ा था कि कचरे के डब्बे में एक बच्ची मिली थी। कोई उसे वहाँ छोड़कर चला गया था!

लड़कों की चाह में, जानबूझकर बच्चियों की हत्या किए जाने को "कन्या शिशु हत्या" कहा जाता है। यह हकीकत बहुत पुरानी है, और हमारे पूरे इतिहास में इस वजह से लाखों हत्याएँ की गई हैं। यह "पितृसत्ता" का बहुत क्रूर और निरंकुश स्वरूप है, जिसमें लड़कियों और महिलाओं के साथ भेदभाव किए जाने की व्यवस्था निहित है। पारम्परिक रूप से कन्या शिशु हत्या के लिए कई तरीकों का उपयोग किया गया है जैसे बच्चियों को भूख और प्यास से मरने के लिए छोड़ देना।

आज अस्पतालों में ऐसी अल्ट्रासाउंड मशीनें (पराध्वनिक यंत्र) हैं जिनका उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि माँ के गर्भ में मौजूद शिशु की स्थिति ठीक है कि नहीं। पर इस जाँच में आपको यह भी पता चल जाता है कि पैदा होने वाला शिशु लड़का है या लड़की। कई लोग डॉक्टरों से यह जानकारी माँगते हैं, और यदि गर्भ में पलने वाला भ्रण कन्या का हुआ, तो वे डॉक्टर से उसे जन्म से पूर्व ही नष्ट करने के लिए कहते हैं।

लड़कियों को क्यों छोड़ दिया जाता है, और उन्हें मारा क्यों जाता है?

दरअसल दहेज की वजह से लोग लड़कियों को मार देते हैं। अगर इस ज़िले में मादा ऊँट पैदा होती है, तो पूरे गाँव में गुड़ बँटवाया जाता है। लेकिन बड़ी विडंबना है कि अगर लड़की पैदा होती है, तो यह दर्शाने के लिए कि उस परिवार पर दुर्भाग्य की छाया पड़ गई है, मिट्टी का घड़ा फोड़ा जाता है...यह जगह छोटी बच्चियों के लिए नहीं है!

राजस्थान में अधिकांश महिलाएँ अपने घर की चारदीवारी के भीतर ही रहती हैं।

और ऊँची जातियों में तो ऐसा और भी ज़्यादा होता है।

और वे हमेशा घूँघट किए रहती हैं – उनका चेहरे पर सदा पर्दा रहता है।

काश कि वे ऐसी परम्पराओं से बाहर निकल सकतीं...

और शिक्षा पा सकतीं।

पुरुष और महिलाओं, दोनों का शिक्षित होना ज़रूरी है।

लेकिन पढ़े-लिखे लोग भी अल्ट्रासाउंड मशीन का इस्तेमाल करके माँ के गर्भ में पलने वाली बच्चियों को मार रहे हैं।

दरअसल उस सामाजिक व्यवस्था को बदलना होगा जो लोगों में लड़कों की जबरदस्त चाह पैदा करती है।

परिवार की सम्पत्ति का वारिस लड़का ही होता है।

महिलाओं को भी सम्पत्ति में हिस्सा मिलना चाहिए।

सती

राजस्थान में सती प्रथा का भी खूब चलन रहा है। सती वह प्रथा है जिसमें विधवा स्त्री को उसके पति की चिता पर जिन्दा जला दिया जाता है। हम ठीक से यह तो नहीं कह सकते कि इस प्रथा की शुरूआत कैसे हुई। पर तीसरी शताब्दी ईसवी से भारत के विभिन्न भागों में ऐसी घटनाओं के होने का ब्यौरा मिलता है। मार्को पोलो और इब्नबतूता जैसे यात्रियों

ने इस प्रथा के बारे में लिखा है। इतिहासकार कहते हैं कि यह प्रथा दुनिया के अन्य हिस्सों में भी प्रचलित थी।

क्या समाज के सभी वर्गों में सती प्रथा का प्रचलन था?

पारम्परिक रूप से तो सुविधासम्पन्न जातियों में इस प्रथा का प्रचलन था, और इसे, ज़्यादातर, संभ्रान्त शासक वर्ग के साथ जोड़कर देखा जाता था। पर ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ अन्य जातियों ने भी सती प्रथा को अपनाया था।

चित्र: यह एक सती स्मारक है जिसमें विधवा स्त्री के हाथ दर्शाए गए हैं। ये स्मारक मृत शासकों और उनकी सतियों के सम्मान में बनाए गए थे। सती को महिलाओं के ऐसे धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रचारित किया गया था जो पति और पत्नी, दोनों की मुक्ति को सुनिश्चित करता था।

भारत के मुगल शासकों ने इस प्रथा को रोकने की कोशिश की। ब्रिटिश शासन के दौरान, ईसाई मिशनरियों तथा हिन्दू सुधारवादियों ने शासन पर दबाव डाला, जिसने 1829-30 में सती पर प्रतिबन्ध लगा दिया। एक ओर जहाँ ब्रिटिश हुकूमत ने उनके अधीन इलाकों में सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया, वहीं दूसरी ओर राजस्थान में, जो सीधे ब्रिटिश हुकूमत के अधीन नहीं था, यह प्रथा इस प्रतिबन्ध के बाद भी सालों तक जारी रही। सन् 1846 में राजस्थान की कई रियासतों ने भी सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

लेकिन कुछ ही साल पहले 1987 में, देवराला के एक राजपूत परिवार की स्त्री, रूपकंवर, सती हो गई थी। इस घटना के पूर्व, महिलाओं के एक सामाजिक कार्य समूह ने इसका विरोध किया था, और राजस्थान उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी। न्यायालय ने महिलाओं की याचिका के हक में फैसला दिया था, और पुलिस ने सती को रोकने की कोशिश की थी। लेकिन राजपूतों ने बहुत सारे स्वयंसेवक इकट्ठे कर लिए थे जिन्होंने पूरी घटना पर कड़ा पहरा रखा। लोग 200 बसों से उस स्थान पर आए थे, और इन बसों का इन्तजाम रूपकुंवर के पिता ने किया था। रूपकंवर सती हुई, और लोगों ने उसकी सती होने के स्थान पर एक सती मन्दिर बनाने की योजना बनाई, जिसके लिए लोगों से पैसा भी इकट्ठा किया गया।

देशभर में मानवाधिकार समूहों ने तथा साम्यवादी समूहों ने इसका विरोध किया। सती की घटना में भाग लेने वाले कई लोगों को गिरफ्तार किया गया, और भारत सरकार ने सती आयोग (निरोधक) अधिनियम 1987 पारित किया। इस कानून के अन्तर्गत सती होने के लिए उकसाने के अपराध लिए मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है, तथा सती को महिमामंडित करने के लिए कम से कम 1 वर्ष के कारावास का प्रावधान है।

बँधुआ मजदूरी

हमने बँधुआ मजदूरी के बारे में अध्याय 4 में चर्चा की थी। बँधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 में पारित किया गया था। हाल ही में अनुमेहा यादव ने राजस्थान की कई खदानों और खनन स्थलों का दौरा किया, और पाया कि राज्य में आज भी बँधुआ मजदूरी प्रचलित है। यहाँ एक मजदूर द्वारा किया गया वर्णन दिया गया है:

"मैंने पाँच साल पहले खदान के मालिक से 10,000 रुपए उधार लिए थे। वह कहता है कि अब मेरे कर्जे की राशि दोगुनी हो गई है। वह मुझे हर महीने अपने परिवार की गुजर-बसर के लिए 500 रुपए देता है। साल के अन्त में वह इसे मेरे पिछले कर्ज में जोड़ देता है। इस तरह मेरा कर्जा हर साल बढ़ता ही जाता है। मेरे हाथ में एक रुपया तक नहीं आता। अगर मैं अपने गाँव भाग जाऊँ, तो खदान के मालिक किसी जीप या मोटरसाइकिल पर बैठकर आएँगे और मुझे उठाकर वापस ले जाएँगे।"

यह वर्णन बाबूलाल खैरवा का है जो कोटा ज़िले की एक बलुआ पत्थर की खदान में काम करता है। यहाँ पर वार्षिक मुनाफा 5 करोड़ रुपए या उससे भी ज़्यादा हो सकता है, जो खदान के आकार पर निर्भर करता है। बलुआ पत्थर को हाथ से काटना पड़ता है, यह मशीनों से नहीं किया जा सकता।

बाबूलाल खैरवा बारन ज़िले के एक गाँव से हैं। इस गाँव के अधिकांश लोग भूमिहीन हैं, और वे जीविका के लिए बलुआ पत्थर की खदानों में काम करने चले जाते हैं। सालों पहले, इस गाँव के लोग खैर के पेड़ की लकड़ी काटा करते थे, और

उसके सत्त को निकालकर, उसे उबालकर पान में इस्तेमाल किए जाने वाले कत्थे की तरह बेच दिया करते थे। राज्य सरकार ने इस कार्य में खैरवाओं की मदद करने के लिए सहकारी समितियाँ बना दी थीं। पर पिछले दो दशकों में वनों का इतना ह्रास हुआ है कि सहकारी समितियों को बन्द करना पड़ा। अब इनमें से अधिकांश लोग बलुआ पत्थर की खदानो में काम करते हैं। ये लोग कोई और काम नहीं कर सकते क्योंकि ये बँधुआ मजदूर हैं।

सन् 1978 में गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा बँधुआ मजदूरी पर किए गए पहले सर्वेक्षण में भारत के दस राज्यों में 26 लाख बँधुआ मजदूर पाए गए थे जिनमें से 25 प्रतिशत जनजातीय लोग थे और 60 प्रतिशत दलित थे।

भारत सरकार द्वारा सन 2004 में 'असंगठित क्षेत्र में राष्ट्रीय उद्यम आयोग' का गठन किया गया। इस आयोग के एक सदस्य का कहना है, कि सामूहिक प्रयास से, तथा कामगारों को आमदनी व भोजन की सुरक्षा प्रदान करके ही बँधुआ कर्ज से छुटकारा पाया जा सकता है।

बाल विवाह

राजस्थान तथा भारत के कई अन्य राज्यों में आज भी बाल विवाह किए जाते हैं, भले ही ये पूरे देश में प्रतिबन्धित हैं। शंभुराज तंवर इंडिया अनहर्ड में कहते हैं कि बाल विवाह के पीछे भी प्रमुख कारण आर्थिक ही हैं। यह प्रथा सबसे अधिक दलित और हाशियाग्रस्त समुदायों में देखने को मिलती है। वे कहते हैंः

"राजस्थान एक सामन्तवादी प्रदेश है, और सम्पत्ति तथाकथित ऊँची जाति के लोगों के हाथों में केन्द्रित है। हाशिए पर रहने वाले लोग गरीबी में रहते हैं... महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की है। गरीब परिवारों को उनकी बेटी की शादी के खर्चे उठाना बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। इसलिए यदि उनके परिवार में किसी की शादी होती है, तो वे उस मौके का उपयोग करते हुए अपनी सभी बेटियों की शादी एक साथ कर देते हैं। लेकिन बाल विवाह सिर्फ गरीब परिवारों तक ही सीमित नहीं हैं"।

भंवरी देवी राजस्थान सरकार के एक विकास कार्यक्रम में काम कर रही थी। उन्होंने एक गूजर परिवार के एक वर्षीय शिशु की शादी रोकने की कोशिश की। शादी तो हो गई, लेकिन गूजर लोग उन्हें रोकने के लिए भंवरी देवी से बहुत नाराज हो गए। उन्होंने भंवरी देवी का सामूहिक बालात्कार किया। यह घटना ऐसे जोखिमों का एक उदाहरण थी, जिनका सामना किसी कामकाजी महिला को करना पड़ सकता है।

यह दिखाता है कि सामाजिक सम्बन्धों का किस प्रकार पतन हो जाता है...

....कि ऐसी परिस्थितियों में यौन उत्पीड़न का 'उपयोग' किया जाता है!

महिला समूहों ने विशाखा नाम के तहत भारत के उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर की। सन् 1997 में, उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कामकाज की जगहों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दिशा निर्देश दिए थे।

बच्चों को बेचना

ऐसे कई मामले होते हैं जहाँ माता-पिता ही अपने बच्चों को बेच देते हैं। आम तौर पर यही पाया गया है कि इन घटनाओं की वजह भी अन्ततः गरीबी ही होती है। शिशुओं को आम तौर पर ऐसे पति-पत्नी को बेचा जाता है जिनकी अपनी कोई सन्तान नहीं होती। अभी हाल ही में राजस्थान में एक ऐसा मामला सामने आया जहाँ एक गर्भवती स्त्री को अपने लकवे से जूझ रहे बड़े बेटे के इलाज के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ी। एक सन्तानहीन पड़ोसी उसके पास आया और उसे प्रस्ताव दिया कि अगर वह अपने पैदा होने वाले बच्चे को उसे दे दे तो वह उसके बेटे के इलाज का पूरा खर्चा उठाएगा। लेकिन उसकी शर्त यही थी कि होने वाला बच्चा वह तभी लेगा अगर वह बेटा हुआ तो! वह महिला राजी हो गई क्योंकि वह बहुत गरीब थी, और अपने बड़े बेटे के इलाज का खर्चा उठाने में असमर्थ थी।

भूगोल को नया आकार देना

राजस्थान का भूगोल उत्पादन की प्रक्रिया के माध्यम से समाज और प्रकृति के बीच बनने वाले सम्बन्धों द्वारा निर्मित होता है। ये प्रक्रियाएँ सामाजिक भूगोल को निरन्तर नया स्वरूप देती रहती हैं।

पशुपालन, खेती, खनन, उद्योग, पर्यटन जैसी उत्पादन प्रक्रियाएँ...। और फिर ये प्रक्रियाएँ ही स्थानिक और सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप निर्मित करती रही हैं।

ज़मीन पर कुछ लोगों का ही स्वामित्व होता है...

...और श्रम अन्य लोगों द्वारा किया जाता है।

...और ये स्थितियाँ जाति, वर्ग तथा लिंग के आधार पर तय होती हैं।

...परिवार के भीतर, गाँवों में और शहरों में भी।

इन असमान सम्बन्धों से तनाव पैदा होते हैं।

कभी-कभी लोग इन परिस्थितियों को बदलने के लिए संगठित होते हैं।

कभी-कभी सरकार कानूनों के माध्यम से हस्तक्षेप करती है।

इन परिस्थितियों के मूल में दरअसल संसाधन, और उनके स्वामित्व का सवाल निहित है।

राजस्थान के भूगोल का वर्णन कई सामाजिक-भौगोलिक संरचनाओं की स्थानिक निरन्तरता के रूप में किया जा सकता है। शिकार-संग्रह से लगाकर खेती, कारखानों का उत्पादन, साहूकारी, व्यापार, सट्टेबाजी और स्थावर सम्पदा तक सारी प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अलग नहीं हैं, बल्कि वे काल व स्थान की दृष्टि से लगातार एक दूसरे से सम्बन्धित रही हैं। आधुनिक राजस्थान प्रदेश में चुनाव अक्सर भूतपूर्व राजघरानों के सदस्यों द्वारा जीते जाते हैं। शक्तिशाली समूह, जातियाँ और पुरुष समाज में अपनी उपस्थिति का पुरजोर एहसास कराते हैं।

खनन का कार्य जनजातीय समुदाय द्वारा शुरू नहीं किया जाता, लेकिन अक्सर उन्हें विस्थापित होकर और अपनी रोजी-रोटी से हाथ धोकर, इसकी कीमत चुकाना पड़ती है।

जनजातीय श्रमिक अब कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरी करने के लिए जा रहे हैं।

पर्यटन को भी पशुपालकों, किसानों या जनजातीय समाज द्वारा शुरू नहीं किया गया, लेकिन इससे ये सभी समाज प्रभावित होते हैं, कई बार प्रतिकूल रूप से।

तनाव व संघर्ष भी इन सम्बन्धों के लक्षण होते हैं। ये तनाव विभिन्न सामाजिक-भौगोलिक संरचनाओं के बीच, तथा ऐसी प्रत्येक संरचना के भीतर भी दिखाई देते हैं।

जैसे जातिगत भेदभाव तथा पुरुषों के वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष।

या वर्ग-आधारित भेदभाव के खिलाफ, और शहरों में झुग्गी-झोपड़ियों को गिराने के खिलाफ संघर्ष।

लोग मीरा के भजनों को गाकर विरोध जताते हैं।

विभिन्न संगठनों ने सती के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया था।

...और जाति व्यवस्था के खिलाफ भी।

लोग सरकारी नौकरियों में कुछ जातियों के लिए आरक्षण की माँग करते हुए रैलियाँ और धरना प्रदर्शन करते है।

राजस्थान में भूमि के उपयोग को लेकर भी संघर्ष चलते हैं, क्योंकि खनन उद्योग, विकास परियोजनाएँ और राष्ट्रीय उद्यान जनजातीय लोगों को विस्थापित करते रहते हैं। यहाँ महिलाएँ गरिमापूर्ण जीवन और न्याय के लिए संघर्ष करती हैं। इस तरह लोग राजस्थान के सामाजिक भूगोल को निरन्तर बदलते रहते हैं।